श्री श्री माँ आनंदमयी की संनिधि

कार्तिकेय भट्ट

श्री श्री माँ पिता-माता के साथ

श्री श्री माँ आनंदमयी की संनिधि

कार्तिकेय अनुपराम भट्ट

श्री श्री माँ आनंदमयी आश्रम

श्री श्री माँ आनंदमयी मार्ग, भीमपुरा, चाणोद,
ता. डभोई, जि. वडोदरा, पीनकोड - 391105

Shri Shri Ma Anandamayi Ki Sannidhi
लेखन–संपादन : कार्तिकेय अ. भट्ट

प्रकाशक : श्री श्री माँ आनंदमयी आश्रम
श्री श्री माँ आनंदमयी मार्ग, भीमपुरा,
चाणोद, ता. डभोई, जि. वडोदरा, पीनकोड – 391105
फोन नं. : 02663 - 233208, 233782

प्रथम आवृत्ति : 1 मई, 2018
श्री श्री माँ आनंदमयी की जन्मतिथि

सौजन्य : डो. बिपीनभाई भट्ट
[फ्लोरिडा, यु. एस. ए.]

आवरण चित्र : अर्पित ठाकोर
फोन नं. मो. : 9879322033

कम्प्यूटर अक्षरांकन : किरीट रावत
[बोनान्झा प्रिन्ट मिडीया],
अहमदाबाद–380028
फोन नं. मो. : 9409573057

मुद्रक : मुद्रेश पुरोहित
[सूर्या ओफसेट]
आंबली, अहमदाबाद – 380058
फोन नं. : 02717-230112

निवेदन

श्री माँ के जीवन और उपदेश की यह पुस्तिका 'श्री श्री माँ आनंदमयी की संनिधि' के प्रकाशित समय पर मैं सुखद आनंद की अनुभूति करता हूँ। श्रीमाँ के आविर्भाव से लेकर उनके ब्रह्मलीन होने तक की सारी बातें और प्रसंगो का अति संक्षिप्त रुप में प्रस्तुत करने का नम्र प्रयास श्री माँ की कृपा से ही हुआ है।

श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री शारदामणिजी की तरह श्री माँ भी सीधे चैतन्यलोक से इस धरती पर, पूज्य माँ के मोक्ष की कामना करनेवाले शिष्यों के कल्याण के लिए मानव देह धारण कर आए हैं। इस दिव्य घटना के संदर्भ में श्री माँ ने कहा था : "आप लोगों ने जैसा चाहा, जैसा विचार किया वैसा ही आपको मिला है।" श्रीमाँ के पति श्री भोलानाथ बाबा दिसंम्बर 1922 में श्री माँ के पास से दीक्षा ग्रहण कर के श्री माँ के प्रथम शिष्य बने थे।

श्री माँ का मूल नाम निर्मलादेवी था। बंगला सरकार के अधिकारी श्री ज्योतिषचंद्र रॉय श्री माँ के अनन्यभक्त थे। एक दिन, एक प्रसंग के अवसर पर उन्होंने श्री माँ को 'माँ आनंदमयी' कह कर बुलाया, बाद में समग्र विश्व में श्री माँ इसी नाम से जग विख्यात हुए। 'आनंदमयी' शब्द का भावार्थ स्पष्ट करते हुए श्रीमाँ ने कहा था : "भगवती का चिरंतन नाम आनंदमयी है, हर चीज में आनंदमयी विद्यमान है।" श्री ज्योतिष बाबू की छोटी जीवन रेखा श्री माँ की असीम कृपा से ही दीर्घ हुई थी और श्री माँ के कहने के अनुसार ज्योतिष बाबु के देहविलय के कुछ समय पश्चात् श्री माँ के अणु-परमाणु के साथ धीरे धीरे उनमें [माँ में] विलिन हो गए थे, एकाकार हो गऐ थे।

श्री माँ के संक्षिप्त जीवनामृत के साथ श्री माँ के 'खयाल' और छोटे-छोटे सुवाक्यों या सुक्तिओं से श्री माँ की आध्यात्मिक विभावना प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास श्री माँ की अनेक कृपा दृष्टि से ही हो सका है। श्री माँ की अलौकिक कृपा के अनगिनत प्रसंग है परंतु नमुने के तौर पर एक

प्रसंग यहाँ दर्शाया है, इस प्रसंग के साक्षी महान सूफी संत श्री गुरुदयाल मलिकजी थे। उनके शब्दों में यह प्रसंग प्रस्तुत है : श्री माँ की गुरु विभावना के बारेमें श्री माँ तथा भक्तों के बीच गुरु के बारे में हुई प्रश्नोत्तरी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। श्री माँ कहती है : "गुरु के देहांत के पश्चात् भी गुरु के साथ बंधे संबंध की गाँठ छूट नहीं जाती। गुरु की मुक्ति होने के बाद भी गुरुदेव किसी न किसी तरह भक्त को मदद करते रहते है।" श्री रमण महर्षि ने सच ही कहा है : "जीवन मुक्त महात्मा तो पहले से, यानि की शरीर हो तब भी, सर्वात्मा परमतत्व के साथ सभानावस्था में एकरुप होते हैं। इसलिए संदेह अवस्था में दिक्षा देने और मार्गदर्शन करना असंगत न हो तो भी विदेह अवस्थामें भी नहीं है। मृत्यु उनके स्वरुप, या उनकी अवस्थामें कोई भी बदलाव नहीं करता।"

दीदी माँका [श्री माँ की माँ] ब्रह्मलीन होने के बाद श्री माँ के आदेश के आधीन होकर स्वामी श्री भास्करानंदजी, जिज्ञासु श्रेयार्थीओं को मंत्रदिक्षा प्रदान करते थे। परंतु उनकी विनम्रता ऐसी थी की वे कहते थे कि : "हम मात्र सॉल डीस्ट्रीब्युटर ही है।" अपना समग्र जीवन माँ की आज्ञा और सेवामें व्यतित करने वाले श्री भास्करानंदजी ने 8-5-2010 के दिन भीमपुरा आश्रम में महाप्रयाण किया था।

श्री माँ ने अपने जीवनकाल में बहुत से संतों, ज्ञानीजनों, महापुरुषों के साथ मिलन–मुलाकात तथा सत्संग–वार्तालाप किए थे। प्रस्तुत पुस्तिका में महा महोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज के गुरुवर्य, सूर्यविज्ञान के प्रखरज्ञाता, महायोगी श्री विशुद्धानंदजी के साथ श्री माँ की मुलाकात के प्रसंग और इन दो महान संतो के बीच हुआ वार्तालाप यहाँ प्रस्तुत किया गया है। श्री माँ से मिले हुए संतों- ज्ञानीजनों में से डिवाइन मधर, परमहंस योगानंद, यशोदा माँ और जे. कृष्णमूर्ति के बारें में भी इस पुस्तक में लिखा गया है। भारत के भूतपूर्व वडाप्रधान स्व. जवाहरलाल नहेरु और सुभाषचंद्र बोझ की माँ के साथ हुई मुलाकात के बारें में भी लिखा गया है। श्री माँ की परावाणी को सच्चे अर्थ में समझने वाले तथा समझाने वाले श्री गोपीनाथ के अर्थघटन को श्री माँ ने भी मान्यता दी थी। प्रस्तुत पुस्तिका में समान रुप से श्री गोपीनाथजी के द्वारा दर्शाए गए आध्यात्मिक उन्नति के पथ क्रमबद्ध समाविष्ट किए गए हैं।

पुस्तिका के परिशिष्ट में श्री ज्योतिषचन्द्र रोय की श्री माँ के बारे में दो पद्यरचनाएँ और मेरे परम पूज्य पिताश्री द्वारा रचित संस्कृत स्तोत्र 'श्री श्री माँ आनंदमयी स्तवः' पद्य रचनाएँ हिन्दी अनुवाद के साथ शामिल की गई है। सन 1978 में श्री माँ के जन्मदिन के अवसर पर इस स्तोत्र को श्री भास्करानंदजी की उपस्थिति में श्री माँ को प्रत्यक्ष रुप से अर्पण किया गया था।

प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी अनुवाद श्री एच. वि. प्रजापति ने करके दिया है, इस कार्य में श्री हसमुख वोरा ने सहकार दिया है। पुस्तक का कम्प्यूटर अक्षरांकन श्री किरीट रावत ने, आवरण श्री अर्पित ठाकोर ने, मुद्रणशुद्धि प्रा. वंदनाबहेन भट्ट ने तथा मुद्रण श्री मुद्रेश पुरोहित ने किया है। श्री आनंदमयी आश्रमके प्रमुख श्री जगत कंथारिया तथा मंत्री श्री संजय कपूरने साथ और सहकार दिया। U.S.A. स्थित डो. बिपीन भट्ट तथा श्रीमती डो. मीना भट्टके सौजन्यसे यह पुस्तक प्रकाशित हुई है। पुस्तक प्रकाशन के इस शुभ अवसर पर श्री श्री माँ की कृपाके अधिकारी आप सब के प्रति मैं मेरा आदर और स्नेह व्यक्त करता हूँ।

मुझे आशा है कि यह पुस्तिका जिज्ञासु लोगों को जिन्हे श्री माँ के बारे में या उन के उपदेश के बारे में अधिक जानकारी नहीं है उनको श्री माँ के अनंत साहित्य का लाभ प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगा।

श्री माँके अनेक पुस्तकें अंग्रेजी और हिंदी भाषाओं में उपलब्ध है। कई हिंदी भाषाके पुस्तकों की श्रेणी निम्न लिखित है :

- श्री श्री माँ आनंदमयी : लेखिका – गुरुप्रिया देवी [1 से 20 भाग]
- श्री श्री माँ आनंदमयी प्रसंगः लेखक–अमूल्यकुमार दत्तगुप्त [1 से 5 भाग]
- माँ आनंदमयी : लेखक – श्री पन्नालाल
- अमरवाणी : लेखक – श्री गोपीनाथ कविराज
- मातृदर्शन : लेखक – श्री ज्योतिषचन्द्र रॉय

जय माँ।

17/B, 'अनुग्रह', चन्द्रनगर सोसायटी, • कार्तिकेय अ. भट्ट
नारायण नगर रोड, पालडी, अहमदाबाद-7,
फोन : 91-79-26632984.

श्री श्री माँ आनंदमयी और गुरुप्रिया दीदी

श्री श्री माँ आनंदमयी की संनिधि

"मुमकिन है कि आप इस शरीर को अपने मन से बहार निकालना चाहते हो पर यह शरीर एक दिन के लिए भी नहीं जाएगा। वे आपके विचारों में से जाएगा नहीं और वो कभी भी नहीं जाएगा। जो कोई भी व्यक्ति प्रेमपूर्वक इस शरीर की ओर एकबार आकर्षित हो जाता है वह सेंकडों कोशिशें करने के बावजूद अपने शरीर के मन पर स्थापित हुए प्रभाव को मिटाने में कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाएगा। यह शरीर उनकी स्मृतिमें रहता है और सदा रहेगा।"

ये शब्द है, महात्मा गांधीजी को उनके जीवन में आनेवाली मृत्यु के बारे में पहले से जानकारी देनेवाले, सुभाषचंद्र बोझ को देश की सेवा के साथ साथ अंतर्मुख होकर अपने भीतर के देश की सेवा करने को कहने वाली, जमनादास बजाज को लंबे समय तक शांति की भेंट प्रदान करनेवाली, विश्व बेंक के अध्यक्ष को गुरुमंत्र देने वाली, भारत केभूतपूर्व प्रथम वडाप्रधान स्व. जवाहरलाल नहेरु को हररोज कुछ निश्चित समय पर ईश्वर के लिए एक अखंड पल की माँग करने वाली, राजमाता सिंधिया, कमलापति त्रिपाठी, त्रिगुण सेन, खेतान जैसे नामांकित लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर के सदुपदेश देनेवाली माँ आनंदमयी के। उनका जन्म सन् 1896 की दिनांक 1 मई, शुक्रवार को प्रातःकाल 3 बजे बंगाल के त्रिपुरा जिले के खेउरा गाँव में [जो अभी बंग्लादेश] एक धार्मिक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता का नाम विपीन विहारी भट्टाचार्य और माताजी का नाम मोक्षदासुंदरी था। माता-पिता दोनों ही परमभक्त, सदाचारी और पवित्रता की प्रत्यक्ष मूर्ति के समान थे। उनकी वंश मर्यादा बहुत सम्मानित थी तथा पूर्वजो में से भी एक-दो पुरुषों को सिद्धि भी प्राप्त हुई थी। परिवार गरीब होने के बावजूद समाज में उनका अत्यधिक मान था। ऐसा सुनने में आया है कि विपीन विहारीजी [दादा महाशय] के माताजी कसवानी विख्यात कालीमाता मंदिर में प्रार्थना करने गए कि : "विपीन के वहाँ पुत्र

जन्म हो" पर भूल से कहा गया : "विपीन के वहाँ पुत्री जन्म हो" वृद्ध दादी की यह प्रार्थना के थोडे दिनों के पश्चात् श्री माँ का आविर्भाव [जन्म हुआ] हुआ था।

माँ आनंदमयी ने अपने जन्म के बारे में कहा था : "इस शरीर का जन्म पूर्वजन्म के फल स्वरुप नहीं हुआ था।" इस संदर्भ में गुरु प्रिया दीदी ने लिखे हुए एक प्रसंग का यहाँ उल्लेख करना योग्य है : "एक दिन श्री माँ ब्रह्मचर्य, सत्य, अहिंसा और त्याग की आवश्यक्ता समझा रहे थे। मेरी डायरी में से कुछ अंश मैं श्री माँ को पढकर सुनाती थी। इस में लिखा हुआ था : "नानाजी चले गए थे; जब वे घर वापस आए तब माँ का शरीर प्रकट हुआ।" यह बात सुनकर ही माँ बोली : "सामान्य जीवो के जैसे माता-पिता से इस शरीर का जन्म हुआ है ऐसा सब मानते है।" इतना बोलकर माँ चूप हो गए। पूछने पर मुँह से फिर एक अक्षर निकला नहीं - और विपीन भट्टाचार्य ने विधुमुखी [माँ के माँ का दूसरा नाम] की कन्या के रुप में जन्म लिया। इस बात पर मैंने प्रश्न किया : "उस दिन इस प्रकार से बात की थी कि साधारण जीव की तरह माता-पिता से आपका जन्म नहीं हुआ इस बातको थोडी स्पष्ट समझाने की कृपा करें। और पहले भी एक बार बात बात में बोले थे कि : "इस शरीरके आविर्भाव होने से पहले पिताजी ने गृहत्याग किया था। बहुत दिनों तक भगवे वस्त्र भी धारण किए थे। हरि कीर्तन में समय व्यतीत करते थे। उनकी इस वैराग्य भावना के समय ही इस शरीर का आविर्भाव हुआ।" इस विचार से मैंने श्री माँ को यह बात स्पष्ट समझाने की कृपा-याचना की। तब माँ बोली : "इस शरीर की बात छोड दे, पर स्त्री से उत्पन्न न हो कर मातृ गर्भ में संतान की तरह प्रकट हो सकता है।" — मैं ने प्रश्न किया : "उनकी लीला, माया का खेल, अलग अलग तरह प्रकट हो सकता है। आज मातृगर्भ से जन्म होते हुए देखा पर उसमें भी दूसरा क्या हो सकता है ? 'अनन्त, अव्यक्त !' " श्री माँ ने ऐसा कहकर मुख्य बात को दबा दिया। "परंतु आप लोगों ने जैसा सोचा या चाहा होगा वैसा मिला है।" महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज लिखते हैं : "श्री माँ

की अज्ञान अवस्था कभी भी नहीं रही। माँ का जीवन प्राकृतिक कार्य कारण आदि नियमों के अधीन नहीं था। और उनका देहधारण करना पुनर्जन्म के कार्यफल भुगतने के अर्थ में नहीं।" इस बात को माँ स्पष्ट रुप से कहती हैं। उस बात से माँ के पूनर्जन्म की संभावना भी निवृत्त हो जाती है।

श्री माँ को औपचारिक शिक्षण पाठशाला में कुछ खास नहीं मिला था। फिर भी आश्चर्यजनक ढंग से ब्रह्म के साथ तादात्म्य अनुभव कर के आत्मज्ञानी होने का परिचय माँने जगत को दिया था। अपनी बाल्यावस्था से ही ऐसे लक्षण श्री माँ में देखने को मिले थे। उदाहरण के तौर पर विविध प्रकारके देव-देवीओंके दर्शन होते, दूर होते किर्तन को सुनकर शरीर की अनोखी दशा भी होती थी। परंतु कमरे में अंधेरा होने के कारण उनके माता-पिता को उसकी जानकारी नहीं होती थी। लगभग पाँच-छह वर्षकी आयुमें उनकी माता उनको मातला के शिवमंदिर में ले गई थी। उनकी माता उनको दरवाजे पर बिठाकर यहाँ-वहाँ घुम रही थी तभी श्री माँ को नृत्य करते हुए शिवजी के दर्शन हुए थे। श्री माँ को अपने जन्म समय की घटना का भी स्मरण था। श्री माँ ने कहा था : "मैं जन्म समय क्यों रोउँ ? मैं तो दीवार की जाली में से आम के पेड को देख रही थी।"श्री माँ को उनके जन्म के तेरहवे दिन कौन मिलने आए थे वह भी याद था। इस संदर्भ में श्री गोपीनाथ कविराज लिखते है : "श्री माँ के जीवन में उनकी शैशावस्था में भी कई अप्राकृतिक घटनाएँ घटी है वह अत्यंत विस्मयकारक है। साधु-संत तथा योगीओं के जीवन की हम ऐसी कई प्रकार की घटनाओं को अभ्यास में पढते हैं। उन लोगों के जीवन में इनका यथायोग्य स्थान है और गौरव भी है। किंतु ये सब माँ के माधुर्यमय व्यक्तित्व से अनुस्यूत अपूर्व समता एवं आनंदमय स्वभाव की तुलना में नगण्य प्रतीत होता है। वास्तव में माँ का व्यक्तित्व प्रबल होने के बावजूद भी वह उनके व्यक्ति हीन अव्यक्त परम स्वरुप के साथ अभिन्न है; वहाँ तक की यदि उस को एक ही चीज कहने पर भी वह अत्युक्ति नहीं होगा।

13 वर्ष की आयु में ही श्री माँ की शादी रमणीमोहन चक्रवर्ति के साथ हुई, जो बाद में भोलानाथ बाबा के नाम से जाने गए। अपनी पत्नी का तेजस्वी, आध्यात्मिक रुप देखकर पति को संसार के लगभग सारे विचार लुप्त हो गए और दिसम्बर 1922 में अपनी पत्नी के पास से ही उन्होंने दीक्षा ग्रहण की और उन के प्रथम परम भक्त बने। शादी के बाद पति की तरह वासनाग्रस्त होकर भोलानाथजी श्री माँ के नजदीक जाते तब उस समय श्री माँ का शरीर या तो एक मृतदेह बन जाता और सख्त हो जाता, बडा हो जाता या फिर सीकुड कर छोटा हो जाता था, तो यह सब देखकर भोलानाथ डर जाते थे। कभी तो माँ के शरीर का स्पर्श करते ही उनकी वासना एकदम शांत हो जाती थी। जब से उन्होंने श्री माँ की स्वर्गीय पवित्रता और निर्मलता का अहसास किया तब से वे श्री माँ को 'माँ' शब्द से ही बुलाने लगे। श्री माँ और भोलानाथजी का संबंध पिता-पुत्री के समान था। श्री माँ कहती है : "जैसे छोटी बालिका अपने पिता के पास रहती हैं वैसे ही मैं भोलानाथजी के पास रहती थी।"

दत्तात्रयानंद ब्रह्मचारी लिखते है : "बाल्यावस्था से ही श्री माँ में सत्य और निर्भयता के गुण पूर्णरुपसे खिले हुए थे, और गृहस्थजीवन में भी स्वर्गीय पवित्रता, आहार संयम, वाक् संयम, धैर्य, पतिसेवा और उनके आदेशों का पालन, गृहकार्यमें दक्षता, धैर्य, हँसमुख और मिलनसार स्वभाव इत्यादि अनेक गुणों को देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। जब की माँ गृहस्थजीवन में होने के बावजूद भी गृहस्थजीवन से अलिप्त थी।"

श्री माँ का असली नाम निर्मलादेवी था। बंगाल सरकार के अधिकारी श्री ज्योतिषचन्द्र रॉय श्री श्री माँ के अनन्य भक्त थे। श्री भोलानाथ बाबा उनको मानस पुत्र मानते थे। एक दिन एक प्रसंग पर ज्योतिषबाबू ने निर्मलादेवी को माँ आनंदमयी कहकर संबोधित किया और कहा : "माँ आज तो मैं अकेला ही आप को माँ कहता हूँ परंतु एक दिन ऐसा भी आएगा जब की पूरी दुनिया आपको माँ कह कर पुकारेगी।" एक बार

एक भक्त ने माँ से पूछा : "माँ ! आनंदमयी शब्द का क्या अर्थ है ?" श्री माँ ने उत्तर देते हुए कहा : "भगवती का चिरंतन नाम आनंदमयी है। हर चीज में आनंदमयी विद्यमान है । यत्र जीव तत्र शिव, यत्र नारी तत्र गौरी।"

ज्योतिषबाबू श्री माँ के बारे में लिखते है कि : "माँ साक्षात् ब्रह्मांड जननी का मूर्त स्वरुप है। वह सर्व देवमयी परम देवी है, मंत्रदृष्टा ऋषि है। उन में इच्छा-अनिच्छा जैसा कुछ नहीं । उनकी प्रवृत्ति - निवृत्ति उनकी इच्छा से नहीं होती। यह अखंड मातृभाव का सर्वतोमुखी प्रकाश श्री माँ की हर बातों में, कार्यो में और उनके अलौकिक व्यवहारमें दिखाई देता है ।" परमहंस योगानंदजी ने अपने पुस्तक 'Autobiography of a Yogi' में लिखा है : "हिंद में बहुत आत्मदर्शी पुरुषों को मैं मिला हूँ पर इतनी उच्च कक्षा की महिला संत का कभी मैंने साक्षात्कार नहीं किया। उनके कोमल मुखारविंद पर अविरत आनंद की एक ऐसी झलक दिखती है की जिनसे उनका नाम माँ आनंदमयी पडा।" 1 मई 1987 के दिन भारतीय डाक विभाग ने पूज्य श्री माँ आनंदमयी के सन्मान में एक रुपये की डाक टिकट प्रकट की थी। ज्योतिषबाबू की छोटी जीवन रेखा श्री श्री माँ की कृपा से ही लंबी हुई थी । उन के बारे में श्री माँ ने कहा था : "आप को हंमेशां याद रखना है कि आप [ज्योतिषचन्द्र] सच्चे ब्राह्मिन हो। आप के साथ भगवद्भाव रुपी सुक्ष्मांतिसुक्ष्म सूत्र से इस शरीर का [श्री माँ का] अविच्छिन्न योगानुयोग रहा है ।" 1924 में माँ के साथ ज्योतिषबाबू की प्रथम मुलाकात हुई तब उन को ऐसा लगा था कि : "अब इन्हीं चरणों में ही मैं अपने आप को निःशेष कर दूँगा।" और अंत में ऐसा ही हुआ। श्रीमाँ और श्री भोलानाथबाबा दोनों को ज्योतिष के प्रति पुत्रके समान प्रेम था। उनके प्रति ऐसा अनन्य भाव देखकर श्रीमाँ उनको 'भाईजी' कहकर पुकारते थे । इसलिए माँके समूचे भक्तिवृंद में श्री ज्योतिषबाबू 'भाईजी' के नाम से जाने जाते थे।

भाईजी लिखते है कि माँ को समाधि अवस्था में अनेक बार देखा है। उनका वर्णन करते हुए लिखते है कि : "इस अवस्था दौरान माँका

लौकिक भाव धीरे धीरे अस्त हो जाता, साँस की गति धीमी या बंध हो जाती, जिह्वा अटक जाती, आँखे बंध हो जाती, पूरा शरीर शिथिल हो जाता, हाथ-पैर लकडे जैसा हो जाता, शरीर के हरएक अंग कपडे के जैसा ढीला हो जाता, जिस ओर उनका शरीर घुमाओ उस तरफ चला जाता। उनका मुख भी प्राणरस से लाल हो जाता, दोनों गाल दिव्य आनंद की ज्योति से जगमगा जाते, उनके ललाट पर निर्मल और प्रशांत भाव दिखाई देते, उनके शरीर की हर चेष्टाएँ बंध पड जाती, परंतु उनके शरीर के रोंगटे के छिद्रो में से एक अपूर्व तेज निकलता रहता है। कभी - कभी इस अवस्था में वह दस - बारह घंटे तो कभी - कभी चार - पाँच दिन [सन 1930 में रमणाश्रम में ऐसी घटना हुई थी] तक माँ की समाधि रहती थी। इस अवस्था में से वापस आने के बाद उनसे पूछा जाता तब वे कहती है कि : ‘‘सर्व प्रकार के कर्म और भाव का पूर्ण समाधान इसी का नाम समाधिज्ञान। ज्ञान - अज्ञान से परे की यह अवस्था है।’’

माँके लीला खेल का वर्णन करते हुए भाईजी लिखते है कि : ‘‘भक्तों के अंग में मैंने माँ के कौतुक और क्रीडाएँ देखी हैं, परंतु उनका वर्णन अवर्णनीय है। पर माँ उनकी लीलाओं के लिए ऐसा कहती कि : ‘‘यह शरीर तो एक ढोल है। उसका जिस ताल से बजाओगे उस ताल के जैसी आवाज आएगी। मैं तो देखा करती हूँ कि सर्वत्र एक ही खेल चल रहा है।’’ भाईजी लिखते है कि : ‘‘माँ तो पहले से ही कम खाती थी। कई दिनों तक निर्जला उपवास करती, लगभग नौ महिनें तक अनाज के तीन निवालें सुबह और तीन निवाले शामको खाती थी। एक बार माँने सबके आग्रह को मान रखते हुए नौ - दस लोगों का भोजन बनाया था। तब माँ ने कहा कि : ‘‘इस समय अगर आप मुझे मिष्टान तो क्या घास, पत्ते या अपनी पसंद के जो पदार्थ देंगे वो भी मैं किसी भेदभाव या हिचकिचाट के बगैर खा सकती हूँ।’’ माँ कहती है कि : ‘‘ज्ञानी और अज्ञानी दोंनो है तो ही भगवान का संसार है। जिसको जैसे खिलौने चाहिए वैसे उनको देकर शांत रखना चाहिए।’’ एक बार एक मुसलमान बेगम के आग्रह से माँ एक मुसलमान फकीर की कबर पर नमाज़ पढने

गई थी। नमाज के समय शरीर के प्रत्येक अंग की क्रियाएँ तथा नमाज के समय जो बंदगी [प्रार्थना] होती हे वह माँने की थी। माँ ने कहा कि : "इस कबर के अंदर जो फकीर है उनकी आत्मा माँ से दो बार मिलने आई थी।" भाईजी लिखते है कि : "माँ की कईबार अलग अलग असंख्य तसवीरें ली है, परंतु आश्चर्य की बात यह है कि हर तसवीर में माँ का चहेरा एक जैसा नहीं है। एक भी तसवीर में माँ का चहेरा मिलताजुलता नहीं है।"

भाईजी के साथ घटी हुई एक फोटोग्राफ की घटना अद्‌भुत और उल्लेखनीय है। भाईजी और अन्य कई भक्त मिलकर एक दिन माँ की तसवीर लेने गए। उस समय माँ एक अंधेरी कोठरी में अचेतन अवस्था में थी। पिताजी [भोलानाथ बाबा] और भाईजी माँ को पकडकर उस कोठरी से बाहर लेकर आए। तसवीर खींचने के लिए माँ को बिठाकर केमेरा से काफी दूर खडे रहे। तसवीरें लेते समय माँ थोडी तन्मय अवस्था में आई और थोडा हिल गई होंगी अैसी आशंका से शशीबाबू ने एक के बाद एक अैसी अठारह तसवीरें माँ की ले ली। इन अठारह तसवीरें में से सिर्फ अंतिम तसवीर में यह विशेषता थी कि छबी उभर आई। 'उस तसवीर में माँ के ललाट पर एक चंद्र जैसे गोलाकार तेजबिंब की आकृति दिखाई दी और माँ के पीछे भाईजी की छबी भी आ गई।' इस अद्‌भुत और चमत्कारिक घटना के बारे में बताते हुए माँ ने कहा कि : "जब मेरा शरीर उस अंधेरी कोठरी में था तब वह कोठरी चारों ओर से एक प्रकाश से भरी हुई थी। जब तसवीरें खींचने के लिए इस शरीर को बाहर लाया गया तब भी वह प्रकाश वहाँ ही विद्यमान था। धीरे धीरे वह प्रकाश सिकुडकर मेरे ललाट पर आ गया। तब इस शरीर को खयाल आया कि ज्योतिष [भाईजी] पीछे खडे हुए है। अब कब हुआ, क्यों हुआ, क्या हुआ वह सब तो आप जानते ही हो।"

एक चाँदनी रात मे माँ, भोलानाथजी और भाईजी माँ के कहने से सैर करने निकले और रमणामैदान में एक खंडेर जैसे मंदिर में जाकर बैठे। भाईजी ने माँ से प्रार्थना की : "कि ढाका में माँ का कोई भी आश्रम

नहीं है और आश्रम की कमी सभी भक्तों को खलती है। इसलिए एक आश्रम की आवश्यकता है। इसके उत्तर में माँ ने कहा कि : "संपूर्ण विश्व एक आश्रम है। नया आश्रम बनाकर क्या करना है ?" भोलानाथजी ने भी भाईजी की बात का समर्थन दिया। तब माँ ने कहा कि : "अगर तुझे ऐसा ही कुछ करना है तो देख यह ढही हुई इमारत देखता है, यह स्थान अच्छा है। यही तेरा पुराना घर।" और 13 अप्रैल 1929 के दिन इस पुराने खंडेर जैसे मकान में आश्रम की नींव रखी गई। 2 मई के 1929 दिन माँने इस आश्रम में प्रवेश किया। आश्रम संबंधी माँने कहा कि : "आश्रम मतलब शुद्ध और पवित्र स्थान जहाँ पैर रखने से ही धर्मभाव जागृत हो जाता है। साधना, भजन, सत्‌चिंतन, सदालोचना आदि के प्रभाव से ही यहाँ का वातावरण अहर्निश विशुद्ध बना रहे ऐसा प्रयास सबको करना चाहिए। बाद में कालीमूर्ति के लिए आश्रम में – मंदिर में खुदाईकाम करते वक्त चार – पाँच समाधि भी निकली। इस संदर्भ में माँ ने कहा कि : "यह पूरी जगह पवित्र है। पहले यह संन्यासीयों का स्थान था। तुम [भाईजी] भी उनमें से एक हो। "

माँ आनंदमयी आजीवन लोगों के कल्याण स्वरुप समग्र भारत का भ्रमण करती रही। जहाँ जहाँ माँ गई वहाँ वहाँ उनके आश्रम स्थापित हुए। श्री माँ जहाँ जाती वह स्थान तीर्थ स्थल बन जाता। इस संदर्भ में श्री गोपीनाथ कविराज लिखते है कि : "माँ एक स्थल से दूसरे स्थल भ्रमण करती रही है पर फिर भी वह स्र्वथा जानती है कि वह एक ही स्थान पर है।" गति तथा स्थिति अलग अलग और एक उनकी चेतना उनके साथ सहचारी के रुप में एक साथ विद्यमान रहती है। यह एक ही परमतत्व की विभिन्न बाजु है। हकीकत में बाजु है कहाँ ? परमतत्त्व दिग्‌विभाग शून्य, परिघ रुप बंधनरहित, एक और अभिन्न है।" "खुद समाधि पर हो या न हो फिर भी वह हंमेशां उसी स्थिति में होती है। उनमें कभी भी कम-ज्यादा नहीं होता, ना कोई बदलाव होता है। स्थल, काल और व्यक्तिगत मुश्किलों से पर फिर भी इन सभी के बावजुद अपने आप में समाविष्ट करते वह हंमेशां विश्व व्यापी सबसे उच्च्व अद्वैत तत्त्व की आनंद अवस्थामें लीन रहती हैं।"

हर धर्म के संप्रदाय के लोग, धनवान, गरीब हर कोई माँ के दर्शनार्थ के लिए जाते थे। माँ ने परंपरागत मूल्यों और धर्मग्रंथों में दर्शाए गए मार्गों पर दृढ समर्थन व्यक्त कर लोगों को आत्मज्ञान के मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित किया था। श्री गोपीनाथजी ने कहा था कि : "माँ का खुद का कोई पंथ नहीं, कोई विशेष उपदेश या मतवाद नहीं, वह जानती है कि : भगवान की प्राप्ति का मार्ग मूल स्वरुप एक होने के बावजूद व्यक्तिगत रुचि और आधार के अनुसार वह अलग अलग आकार धारण करता है।" श्री माँ ने कहा है कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए जितने व्यक्ति है उतने मार्ग है। श्री माँ का कोई विशेष उपदेश, संप्रदाय या पद्धति नहीं थी परंतु ईश्वर में बेहद श्रद्धा और बिन शरती शरणागति को वह ज्यादा महत्त्व देती थी।

श्री माँ ने धार्मिक पुस्तकें पढी नहीं थी और नहीं साधना के लिए शास्त्र का अभ्यास किया था। क्योंकि पढकर समझने जितना उनके पास अक्षरज्ञान नहीं था। फिर भी उनकी आध्यात्मिक साधना हरपल चलती रहती थी। अगस्त 1922 में झूलन पूर्णिमा की, मतलब रक्षाबंधन के दिन माँ ने स्वयं खुद को दीक्षा दी थी। स्वयं गुरु और स्वयं ही शिष्या! हररोज की तरह भोजन करने के बाद भोलानाथ के बरतन घीसना, उनके लिए बिस्तर बिछाना आदि कार्य करने के बाद यह शरीर भजन करने बैठा था [माँ खुद के लिए 'यह शरीर' शब्द का प्रयोग करती है] क्या हुआ ? पूजा की सारी सामग्री कहाँ से अपने आप आ गई। मैंने बहार से किसी भी चीज मँगवाई नहीं थी। यज्ञ स्थली भी अपने आप बन गई। एक दूसरा बीज मंत्र का अंदर से ['शरीर में से'] अंकुरित हुआ और वह यज्ञ स्थली पर अपने आप लिखा गया। हवन की अग्नि स्वयं प्रज्चलित हुई...ऐसी और भी बहुत सारी चीजें हुई थी। इस शरीर द्वारा शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आहुतिओं का कार्य संपन्न होने लगा। जप होने लगा। पूर्ण रुप से पूजा हुई। सूर्यदेव को अर्ध्यदान दिया गया। उसी समय वहाँ सूर्य के दर्शन हुए। शरीर में झुरझुरी [प्रणवध्वनि]सी होने लगी। मुझे

खयाल आया कि इस शरीर की माँ तो कहा करती थी कि स्त्रीओंको प्रणव-उच्चारण की मनाई है। यह ख्याल आते ही प्रणवध्वनि बंद हो गई। मंत्रों का जप होने लगा। सब से पहले उँगलियाँ सीधी हो गई। उसके बाद जप करने के लिए धीरे धीरे टेढी हुई। मैं इस मुद्दे पर कुछ सोचती या चेष्टा करती तो गडबडी हो जाती। जब चेष्टा छोड देती तो थोडी देर में ही अपने आप सब ठीक हो जाता। पहले भगवत् नाम का जप होने लगा। फिर बीज मंत्र का जप होने लगा। उस मंत्र का 'टक टक' ध्वनि गले से शुरु होकर मेरु दंड तक पहुँचता था। इससे पहले भी शरीर में भिन्न भिन्न प्रकार के आध्यात्मिक विकास और क्रियाएँ हुआ करती थीं। जिसको आप लोग 'दीक्षा' कहते है, उसके जैसी ही यह एक प्रकार की प्रक्रिया थी।

इसी साल में उनके पति भोलेनाथबाबा ने माँ के हाथ से दीक्षा ग्रहण की और माँ के सर्व प्रथम शिष्य बने थे। मजे की बात तो यह है कि श्री माँ को भोलेनाथ बाबा की दीक्षा के संदर्भ में किसीने प्रश्न पूछा था तो माँ ने उस वक्त किस दिन, कौनसी दिनांक को उनकी दीक्षा होगी वह कह दिया था। वह दिन नजदीक आते उनके पति भोलानाथ इस प्रसंग से पीछा छुडाने की बहुत ही कोशिश की परंतु उनकी दीक्षाविधि उसी दिन होकर ही रही। माँ के मुख में से नीकले बीज मंत्र का जप उनको दिया गया। प्रसाद बिना, मांस न खानेकी, शरीर और मन को साफ रखने की और नित्य बीजमंत्र करने की सीख माँ ने भोलानाथबाबा को दी। उनका आचरण भोलानाथजी ने शुरु कर दिया। 1922में श्री माँ के पास विधिनुसार बने शिष्य भोलानाथकी आध्यात्मिक उन्नति हुई। 1938 में संन्यासी के रुप में उनका निर्वाण हुआ तब तक श्री माँ के एकनिष्ठ भक्त बने रहे।

माँ की साधना इतनी प्रबल थी कि कई दिनों तक वे खाती-पीती भी नहीं थी। उन्होंने मौन धारण करना शुरु किया। मौन के समय पर माँ किसी भी प्रकार की निशानी या कोई हावभाव से कुछ भी नहीं कहती। दूसरे शब्दोंमें कहा जाए तो बिलकुल 'काष्ठमौन' रखती थी। उन्होंने लगातार तीन वर्ष तक मौन रखा था। इनके साथ आसन, प्राणायाम, मुद्रा

आदि योग की क्रियाएँ विशेष रुप से माँ के शरीर में होने लगी थी। माँ के मुख में से अपने आप स्त्रोतो और बीजमंत्र नीकलने लगे। माँ की इस वाणी का अर्थघटन करनेवाले, उन्हें सच्चे अर्थमें समझने वाले, समझानेवाले और उनको यथार्थ रुप में पेश करनेवाले एकमात्र अधिकारी गोपीनाथ कविराज थे। माँ खुद भी उनके अर्थघटन को यथार्थ मानती थी, सही मानती थीं।

श्री माँ की साधना के बारे में होती बातों को विशेषरुप से स्पष्ट करते हुए श्री गोपीनाथ कहते हैं कि : "माँ ने बाल्यावस्था में साधिका की भूमिका ग्रहण की थी वह सत्य है। बल्कि उस समय यथार्थ साधिका को जो जो अवस्थाओं का अनुभव हुआ उन सारी बातों का जिक्र शास्त्र में है, वही सारी बातें माँ के अंदर क्रमानुसार हो रही थी वह भी सत्य है। किन्तु यह अभिनय था। इस अभिनय द्वारा माँ पहले अज्ञानी बनने का रुप धारण कर विभिन्न प्रकार की कठोर तपस्या, मौनधारण, आहार संयम, जप-साधना, यौगिक क्रियाओंका अभ्यास और पूजा आदि के अनुष्ठान द्वारा आगे बढती थी। इस अभिनय के अंश के रुप में आत्मज्ञान का विकास भी हुआ। विरह यातना, प्राणोंकी नीरसता और अंत में मिलन का आनंद यह सब उनके स्वयं अभिनीत साधन-नाटक के समुचित स्थानमें होते थे।" कविराज ने विशेष स्पष्टता करते हुए कहा कि माँ की साधना और आत्मज्ञान को किन्हीं दो हिस्से में विभक्त आत्माका क्रियालाप न माने - यह है हंमेशां जाग्रत आत्मचेतना - संपन्न इच्छाशक्ति का एक प्रकाश जो रंगमंच में एक ही समय में दो भूमिकाओं का ग्रहण कर अवतीर्ण हुआ है। श्री माँ कभी भी अज्ञान से आवृत्त नहीं थी। श्री माँ ने कहा है कि : "यह शरीर बचपन से लेकर युवावस्था की कोई भी भूमिकाओं से नहीं गुजरा और साधक से साक्षात्कार तक की अवस्था से [stage] गुजरा नहीं है।"

श्री माँ जिसको 'टुटी-फूटी' भाषा कहती है उसमें वाक्य के छोटे छोटे टुकडो में ही स्वयं स्फुरित प्रकाश-ज्ञान [स्व प्रकाश] के दर्शन होते

हैं। देशगत, कालगत, क्रियागत या भाषागत के हर प्रकार के संस्कारों से मुक्त यह स्वयं स्फुरित वाणी अर्थपूर्ण से परिपूर्ण है, परंतु गोपीनाथजी ने लिखा था इसी तरह : "माँ की सर्व सुक्तियाँ गंभीर अर्थ से परिपूर्ण है।"असतर्क पाठकों को उसमें से कुछ अस्पष्टता प्रतीत हो सकती है। श्री माँ के अनन्य भक्त, दिवंगत चैतन्य बहन दिवेटिया लिखती है कि : "... श्री माँ वाणीका माधुर्य, जो टूटी-फूटी भाषा में छीपा हुआ है वह तो कोई अंतर से स्फुरित छोटे काव्य समान है! श्री माँ की ऐसी खुद की अनोखी वाणी का विवरण सहज रुप से गोपीनाथ कविराज ने किया है जो उनके 'अमरवाणी' नामक पुस्तक में ग्रंथस्थ है। कविराज लिखते है कि : "इस वजह से माँ सरल भाषामें बोल सकती नहीं थी ऐसा अनुमान कर लेना ठीक नहीं है। विपद ग्रस्त या किंकर्तव्यमूढ [क्या करे या क्या न करे ऐसे स्थितिग्रस्थ लोग] हुए लोग माँ के पास आते थे। माँ उन लोगों को सरल, स्पष्ट, एकार्थक ज्ञान और प्रेमभरी निर्मल भाषामें उपदेश देती थी।

लोगों को ईश्वर के साथ जोडने की श्री श्री माँ आनंदमयी की पद्धति अनोखी थी। उन्होंने कभी भी भाषण नहीं किया और ना हि कुछ लिखा। भक्तों, जिज्ञासुओं, दर्शनार्थीओं, मुलाकातियों आदि के साथ माँ वार्तालाप करती थी। उनकी मुश्किलें, समस्याओं, प्रश्नोंके उत्तर भी देती थीं, और ईश्वर को केंन्द्रस्थान पर रख कर उपाय बताती थी। श्री माँ सबके प्रति सहिष्णु थी। यानि कि वह प्रत्येक विषय और प्रत्येक घटना को सही दिशा में दीखाती थी। दूसरे के साथ बातें करते समय सामने वाली व्यक्ति के दृष्टिकोण से ही कहती थी। जिससे वह व्यक्ति माँ की बात को बोध समझकर अच्छी तरह समझ सके। जिस से श्री माँ की निकट कोई भी व्यक्ति अपरिचित नहीं था। स्वामी परमानंदजी लिखते हैं : "Almost everybody feels that Mother loves him the most and so is extremely kind to him and favours him and holds the same doctrine as his." श्री माँ की संवेदना और करुणा का यही रहस्य था। श्री माँ ऐसा कहती थी कि जितने लोग है उतने ईश्वर की ओर पहुँचने के रास्ते हैं।

श्री माँ के सदुपदेश के लिए श्री परमानंदजी लिखते हैं : "Mother's teachings are universal, simple and touching to the heart. She never preaches or gives instruction with any definite purpose. She always says : 'One gets as much as one is destined to get from this body in the light of his bhava"

श्री माँ किसी को साकार भक्ति तो किसी को निराकार ध्यान रखने के लिए कहती थी। किसी को प्रभु के प्रति संपूर्ण समर्पण का बोध करती, तो किसी को 'मैं कौन ?' की पहचान द्वारा अपने आप में बसे परमात्मा को ढूँढने की शिफारीश करती थी।

बहुत से संतों, ज्ञानीजनों ने शास्त्रों की मर्यादा को बाँधा है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा है : "मेरे अंतर का भाव कैसा है पता हैं ? पुस्तकों, शास्त्रो ये सारे सिर्फ ईश्वर के निकट पहुँचने का रास्ता कर देते है। अगर हमें सही रास्ता, या उपाय पता चल जाए तो बाद ये सारी पुस्तकें और शास्त्रों की क्या जरुरत ? शास्त्रोमें परमात्मा को प्राप्त करने की युक्तियाँ की बातें मिले, तो सारी हकीकत जानकर ही हमें सारे प्रयास को आरंभ करना चाहिए, तभी हमें वह वस्तु मिलने का लाभ मिलेगा अन्यथा नहीं।" श्री माँ शास्त्र को रेल्वे की समय सारिणी के समान बताती है और कहती है कि : "जिस तरह गाडी में बैठने के बाद समय-पत्रक की आवश्यकता नहीं रहती, इसी तरह साधना के लिए दिशा प्राप्त हो जाने के बाद शास्त्रों की आवश्यकता नहीं रहती।"

श्री माँ को पूछे गए प्रश्नों का उत्तर अत्यंत सरल, स्पष्ट और छोटा होता था। सूचित करने की बात यह है कि जब श्री माँ को कुछ भी पूछा जाता या कुछ भी करने को कहा जाता तब श्री माँ कभी भी ऐसा न कहती कि : "मैं जानती नहीं या मैं यह नहीं कर सकती या मेरे में ये करने की क्षमता नहीं।" ऐसा कभी भी उनके मुँह से सुनने को नहीं मिला। उनका सामान्य जवाब यह रहता कि : "अभी कहने, करने का 'खयाल' नहीं आता, या फिर कभी पूछना।"

श्री माँ का अगम्य विचारों के बारे में मिस ब्लेंका [आत्मानंदजी] ने अपने पुस्तक 'As The Flower Sheds Its Fragrance' में लिखा है : "अपनी मर्यादित बुद्धि से न मिलनेवाला और कभी कभी असंबद्ध और तर्कातीत जानते हुए श्री माँ का 'खयाल' हंमेशां सभी का आत्यंतिक कल्याण का ही होता है।"

श्री गोपीनाथ कविराज लिखते है : "'खयाल' शब्द मूलतः फारसी भाषा का होने के बावजूद बंगाली भाषा में सामान्य व्यवहार में प्रचलित है। श्री माँ को यह शब्द मिला है। किन्तु उसका उन्होंने अपने अर्थ में व्यवहार कर अपने प्रेमभाव से उसको समृद्ध बनाया है।"

'माँ आनंदमयी का अगम्य खयाल' नामक पुस्तिका में लेखक श्री अनिल गांगुली लिखते है कि : "एक बार मैं ने माँ को माँ के 'खयाल' का अर्थ पूछा था। माँ ने हाथ ऊँचा कर के दर्शाया था : 'खयाल उपर से आते है।' इस हिसाब से मैंने यही निष्कर्ष किया कि माँ का 'खयाल' पीछे का प्रयोजन–बल सर्व शक्तिमान ईश्वर की संकल्पशक्ति ही होना चाहिए।"

श्री माँ को वर्धा आश्रम में दो दिन रहने के लिए गांधीजी ने बहुत आग्रह किया तब श्री माँ ने कहा : "कितने लोगों ने बापू की आज्ञा का पालन किया है। परंतु इस छोटी बालिका का दिमाग खराब है। वह अपने 'खयाल' के मुताबित चलती है। इसलिए बापुजी की मरजी के मुजब बरताव नहीं कर सकती ... खयाल होगा तो मैं अपने आप ही पिताजी से मिलने आ जाउँगी। आप क्या कहते हो पिताजी ? 'खयाल' की रीत तो ऐसी है।" श्री हरिः ॐ श्रीमोटा इनके लिए 'स्फुरणा' शब्द उपयोग करते हैं।"

श्री माँ के 'खयाल' को स्पष्ट करते हुए श्री परमानंदजी लिखते है कि : "Mother's movements arise directly from the Ultimate Reality or the Supreme Will according to our Sanskaras. When our desires correspond to the Supreme Will, then

they are fulfilled. That Supreme Will manifesting itself to us according to our Sanskaras is probably the 'Khayal' of Mother."

श्री माँ ने कभी भी प्रवचन नहीं किया, परंतु वह भक्तों के प्रश्नों के उत्तर देती। किसी भी पद्धति या वादों से मुक्त, निर्बन्ध, सहज वाणी से एकदम सरल, सीधी भाषा में उत्तर देती कि सीधा मस्तिष्क में वह बात बैठ जाती। इनके उत्तरों से तो अच्छे अच्छे साधुजन, विश्वविख्यात पंडितों, तत्त्वज्ञानिओं, विदेश के मंत्रीओं, राजा-महाराजाओं, रानियाँ, अभिनेता, डॉक्टरों, वकीलों और राजकारणीओं को मंत्रमुग्ध कर देती थी। कभी कभी तो श्री माँ किसी प्रश्न या समस्या के हल के लिए अलग अलग उपाय बताती थी। प्रश्न पूछनेवाले व्यक्ति को अपने दृष्टिकोण से पसंदगी करने को भी कहती थी। कभि कबार तो श्री माँने बडी चतुराई से और विनोद वृत्ति से भी प्रश्नों के उत्तर दिए हैं। एकबार एक युवक के प्रश्न का उत्तर देते वक्त श्री माँ ने कहा : "आप के गुरु जो कहते है उसके मुताबित करो। उस युवक ने श्री माँ से कहा कि : "माँ मानो आप ही मेरे गुरु हो।" तब श्री माँ ने कहा : "मानने का ही, पर वास्तव में मैं हूँ तो नहीं!" समग्र भक्तवृंद में हास्य की लहर दौड गई। एकबार मातृ सत्संग में श्री माँ ने दीन-दुःखियों की सेवा करने की सीख दी थी। तब एक युवक ने खडे होकर सत्संग में उपस्थित सभी लोगों की और इशारा करके कहा : "माँ क्या यह लोग दीन-दुःखी है?" तब माँ तुरंत ही बोली कि : "बाबा यही लोग ही दीन-दुःखी हैं।" श्री माँ के उत्तर की गहराई समझकर सत्संग में बैठा हर कोई हँस पडा था।

कभी कबार तो श्री माँ सत्संग के दौरान स्वयं को पूछे गए प्रश्नों के उत्तर स्वयं न देकर सभा में मौजूद पंडितों, साधु-संन्यासिओं को या संतो को उत्तर देने के लिए आग्रह करती। संतो श्री माँ को कहते की आप ही उत्तर दो। तो ऐसे परस्पर के आग्रह के कारण समग्र वातावरण मधुर और आनंद दायक हो जाता। कभी कभी तो श्री माँ संतों द्वारा दिए गए उत्तरों में कुछ और भी हल देकर उत्तर को पूर्ण करती थी।

यहाँ दो महानुभव, भारत के भूतपूर्व वडाप्रधान स्व. पंडित जवाहरलाल नहेरु और श्री सुभाषचंद्र बोझ के साथ माँ की मुलाकात की विस्तृत बातें प्रस्तुत करते हैं। दोनों को दिए गए उपदेश हम सभी के लिए उपयोगी हैं। यह दो प्रसंग नीचे दिए गए है :

• सुभाषचंद्र बोझ की देशसेवा, वही खंड आनंद •

दिनांक 20-10-1938 में जब श्री रामकृष्ण के पत्नी शारदामणी कलकत्ता के दक्षिणेश्वर में रहती थी वहाँ ही श्रीमाँ ठहरी थी। श्री सुभाषचंद्र बोज श्रीमाँ के दर्शन के लिए आते है। दोनों के बीच वार्तालाप हुआ, परंतु दर्शनार्थिओं के आने - जाने से और विक्षेप के कारण संपूर्ण चर्चा न हो सकी। श्री माँ और सुभाषबाबू के बीच के वार्तालाप के प्रस्तुत मुद्दे को ध्यान में रखकर संक्षिप्त में दर्शाने की कोशिश की गई है।

श्री श्री माँ : "पिताजी, आप ही बोलो [देश सेवा करते है इसलिए] भगवान की प्राप्ति होती है या नहीं ?"

सुभाषचन्द्र : "भगवान की तो मुझे पता नहीं ! मैं क्या भगवान को ढूंढने निकला हूँ ?"

श्री श्री माँ : "अच्छा अब कहो, आप देशसेवा क्यों कर रहे हो ? उससे आपको कोई लाभ है ? और हाँ लाभ होता हो तो बताओ तो यह सुनकर देश के बाकी लोग भी देशसेवा करेंगे। अगर कुछ लाभ नहीं होने वाला तो कोई कुछ भी नहीं करेगा। आप तो कैसे अच्छे अच्छे भाषण देते हो, तो अब कुछ कहो।"

सुभाषचन्द्र : "मैं भाषण देने नहीं आया। देशसेवा करने में मुझे आनंद आता है इसलिए देशसेवा करता हूँ।"

श्री श्री माँ : "वह आनंद नित्य है ?"

सुभाषचन्द्र : "यह 'नित्य' शब्द का अर्थ जरा कठिन है।"

श्री श्री माँ : "जो कार्य सदैव करते है [सदाकाल] वह नित्य है। प्रकृति

[स्वभाव] का धर्म ही नित्य आनंद है। अच्छी तरीके से सेवा करने पर नित्य आनंद की अनुभूति होती है। आप यही करते हो ना बाबा?" "बाबा आप क्यों कुछ नहीं बोलते?"

सुभाषचन्द्र : "मैं बोलने नहीं सुनने आया हूँ।"

श्री श्री माँ : "सिर्फ सुनने आए हो? तो जो मैं कहूँगी वह सुनोंगे? जो करने के लिए कहूँगी वह करोगे?"

सुभाषचन्द्र : "वचन नहीं दे सकता, फिर भी कोशिश करुँगा।"

श्री श्री माँ : "देखो, हम संसार में जो भी कर्म कर रहे है वह सिर्फ अभाव का ही कर्म है। वह कर्म करने से आनंद तो मिलता है वह सच है; पर वह आनंद सिर्फ अभाव को ही जागृत करता रहता है... शायद कोशिश करने के परिणाम से अभाव दूर हो गया हो और आपको आनंद मिला हो। परंतु उस आनंद के साथ कोई दूसरा अभाव जाग उठेगा इसलिए कहती हूँ कि दुन्यवी कर्म वह अभाव का कर्म है; पर स्वभाव का कर्म करे तो ही हमें नित्य आनंद की प्राप्ति होती है। ....देश की सेवा करना वह भी अभाव का ही कर्म कहलाएगा, उसमें जो आनंद मिलता है वह भी खंड आनंद होगा, परंतु सबको चाहिए अखंड–आनंद – जो आनंद का अंत नहीं आता वैसा आनंद। स्वभावका कर्म करने से ही अखंड आनंद मिलता है परंतु आप आप ऐसा कह सकते हो कि 'मैं अकेला आनंद में रहकर क्या करुँ? दुनिया को तो मैं निरानंदमयी देखता हूँ।' उसके जवाब में कह सकते है कि जो नित्य आनंद की प्राप्ति हो तो हम दूसरों को भी दे सकते है।"

सुभाषचन्द्र : "स्वभाव के कर्म का क्या?"

श्री श्री माँ : "कर्म सिर्फ अभाव का कर्म है, क्योंकि अभाव के ज्ञान के बगैर कर्म नहीं हो सकता। परंतु जो कर्म करने से स्थायी

आनंद मिलता है वही स्वभाव का कर्म कह सकते है। स्व-भाव वही नित्य है। आपके अंदर अखंड है इसलिए ही आप अखंड आनंद चाहते हो। जो आपके अंदर नहीं है उसकी आपको कभी इच्छाभी न होगी।

श्री माँ ने सुभाषचन्द्र बोझ को देश की सेवा के साथ साथ खुद के अंदर बैठे देश की सेवा करनेके लिए भी कहा था। उसका अर्थ है कि हमें अपने स्व-स्वरुप को हासिल करने का प्रयत्न करने का।

• पंडित जवाहरलाल नहेरु के पास अखंड पल की माँग •

पंडित जवाहरलाल नहेरु के पत्नी कमला नहेरु श्री माँ के अनन्य भक्त थी। पंडित नहेरु भी श्री माँ के पास जाते थे। 1960-61 के अरसे में पंडित नहेरु की तबियत नरम-गरम रहा करती थी। इस दौरान वे दहेरादून में श्री माँ के दर्शन करने गए थे। जग प्रसिद्ध विश्वचिंतक पूज्य विमलाबहन ठकार बचपन से ही श्री माँ के संपर्क में थे। श्री माँ ने पंडित नहेरु के साथ हुई वार्तालाप की बातें विमलाबहन को की थी। यह वार्तालाप विमलाबहन के प्रवचनों की पुस्तक 'अवधूत प्रसादी' में देखने को मिलता है। वही वार्तालाप नीचे दीया गया है।

श्री नहेरु : "माँ ठीक से नींद नहीं आती, कुछ उपाय बताओ।"

श्री श्री माँ : "बाबा, उपाय तो होगा, पर मुझे पहले यह बताओं कि चौबीस घंटो में से एक अखंड पल मुझे दे सकोगे ? वह खंडित नहीं होनी चाहिए। क्योंकि खंडित बीज को बोने से वह अंकुरित नहीं होता।

श्री नहेरु : " 'अखंड पल' का क्या अर्थ ?"*

श्री श्री माँ : " 'अखंड पल' मतलब, उस पल में सिर्फ आप ही रहोगे।

* विमलाबहन ठकार कहते है कि : "क्षण [पल] तो आपने बना ही ली है। वह आपका मापदंड है। बाकी जीवन तो मापदंड से भी अतीत है, कल्पनातीत, गणनातीत है। मतलब कि दो-पाँच की चिंता में मत घिरे रहना। मानवीय व्यवहार के लिए ही यह घडी बाँधने की जरुरत है। पर यहाँ उसकी कोई जरुरत नहीं। सबको - लोगों को लगता है कि दस दस घंटे बैठेंगे तो ही कुछ होगा। ऐसा नहीं होता है।"

उस वक्त आप न देश के वडाप्रधान और नहीं कोंग्रेस के नेता ना इंदिरा के पिता होंगे। आपकी सारी उपाधियाँ, आपका दर्जा सब बाजू में रखना होगा। उस पल में आपको देशकी, पक्षकी, कुटुंबकी कोई चिंता नहीं करनी है। नहीं तो ऐसा होगा कि एक पल देने जाओगे तो आधे पल में तो देश की चिंता शुरु कर दोगे, तो वह पल खंडित हो जाएगी। और मुझे ऐसा खंडित पल नहीं चाहिए। अखंड [क्षण] पल चाहिए और निश्चित समय पर चाहिए। फिर चाहे रात के बाहर बजे हो, दो बजे करो, दिन में दो बजे करो। आपके अनुकूल समय पर करो। पर मुझे निश्चित समय देना। रोज वह समय मुझे मिलना चाहिए। हररोज निश्चित एक पल।"

श्री नहेरु : "माँ मेरे इतने सारे कामों के बीच में से जब मुझे याद आएगा तब रात दिवस जब भी चाहे एक क्षण दूँगा। पर हररोज का निश्चित समय में न दे सकुं।"

श्री श्रीमाँ : "तो फिर बाबा, उपाय नहीं हो पाएगा।"

सिर्फ शिक्षित वर्ग या आध्यात्म जिज्ञासु साधको के लिए ही नहीं बल्कि अशिक्षित वर्ग, मजदूरों, मन से टूटे हुए या मानसिक परेशानियों से ग्रस्त लोगों के लिए, दुराचारी लोग, सबके लिए श्री माँ की एक ही सीख या बोध था : "यह शरीर [श्री माँ] लाखों दर्दों की एक ही औषधि बताते है : 'परमात्मा' में आस्था रखो, उनका अवलंबन करो, जो कुछ भी है और होगा वह उनका ही दिया हुआ है यह समजकर स्वीकार कर लो, जो कुछ भी करो, उनकी सेवा करते है यह समजकर करो, सत्संग करो, हर साँस में उनका विचार करो, प्रभुमय होकर जीवन जीओ। आपका सारा भार इश्वर के हाथ में छोड दो तो अपने आप यह सारा भार इश्वर संभाल लेंगे। और फिर कोई समस्या रहेंगी ही नहीं।" श्री माँ के सनातन धर्म की परंपरा को और शास्त्रों की आज्ञाओंकी दृढतापूर्वक पुरस्कृत करती थी। श्री माँ गृहस्थ जीवन जीने वालों को प्राचीन ऋषि मुनिओं को अनुकरण

करने का आदर्श देती थी तथा पति, पत्नी और संतानों को भगवद् स्वरूप मानकर उनकी सेवा करने को कहती थी। श्री माँ वैदिक यत्रों, होम-हवन और मंत्र-पुरश्चरणों भी करवाती थी।

सामान्य रूप से श्री माँ का जवाब, कोई बात या उपदेश सरल और स्पष्ट रहते थे। वे कभी कंबार कहानी द्वारा, रामायण, महाभारत के उदाहरण द्वारा भक्तों को जरुरी समझ देती थी। किसी को साकार भक्ति की तो किसी को निराकार का ध्यान करने को कहती थी। किसी को प्रभु प्रति संपूर्ण समर्पण का बोध कराते तो किसी को 'मैं कौन ?' की खोज द्वारा अपने अंदर छीपे हुए परमात्मा को ढूँढ निकालने की सलाह देती थी। किसी को भजन-किर्तन करने को कहती। श्री माँ कहती कि : 'यह शरीर किसी का गुरु नहीं' परंतु सभी की धारा देखकर उस हिसाब से उनको आध्यात्मिक सलाह भी देती थी। कभी कबार तो श्री माँ का उत्तर श्रोताओं के लिए समझने के लिए कठिन होता था। अन्यथा श्री माँ की इस अर्थ गंभीर और परावाणी को प्रमाणभूत और श्री माँ को मान्य हो उतना ही अर्थघटन श्री गोपीनाथबाबू द्वारा होता था।

श्री माँ कभी-कभी खुद गा कर भक्तों को हरिनाम की धून करवाती थी। कई बार तो खुद भक्तोंकी भीड में घूम घूम कर कीर्तन करती थी। 'हरि बोल', 'हरि बोल का कीर्तन चैतन्य महाप्रभु की याद दे जाता था।' इस कारण भक्तों के हर प्रकार के मनमें छीपे हुए द्वंद्व भूल कर भगवत्-नाम में एकाकार हो जाते थे, जो भक्तों को शांति प्रदान करता था।

श्री माँ का उपदेशामृत में नाम-महिमा और मौन का ज्यादा महत्त्व दिया गया है। नाम और नामचीन दोनों का भेद दर्शाकर श्री माँ प्रयत्नपूर्वक नाम का आग्रह रखतें हैं। बाद में एक समय ऐसा भी आता है कि नाम अपने आप होने लगता है। नाम लेना और नाम होना दोनों के अंतर को श्री माँ ने अति सुंदरता से समझाया है। श्री माँ के उपदेश से श्री माँ के आश्रमों में भी और भक्तों को रोज रात को 8:45 से 9:00 बजे तक मौन रखना होता है। मौन की महिमा के साथ मौन की मर्यादा का भी बोध श्री

माँ हमें देते है। श्री माँ कहती है कि : "मौन द्वारा ही ज्ञान प्राप्ति होती है ऐसा कहना ठीक नहीं। क्योंकि कोई भी उपाय द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती नहीं। ज्ञान स्व-प्रकाश है। आवरण नष्ट होने के लिए अनुकूल क्रिया आदि है।

छोटे बच्चों में अध्यात्म और धर्म का बीज बोया जाए उसपर माँ ज्यादा आग्रह करती थी। श्री माँ कहती है कि माता-पिता बच्चों को अर्थप्राप्ति के लिए शिक्षण देते हैं। परंतु धर्म के संस्कार नहीं देते। चार आश्रम में से ब्रह्मचर्याश्रम का सही तरीके से पालन नहीं होता था इसलिए अन्य आश्रमों में भी उलटपुलट हो जाती थी। माता-पिता का असंयम ही बच्चों में प्रवेश करता है। जिससे श्री माँ बच्चों के प्रति सविशेष ध्यान देती थी।

श्री माँ सभी बच्चों को 'बंधु' कहकर बुलाती थी। बडी उम्र के व्यक्तिओं को माँ जैसी प्रिय थी वैसे ही छोटे बच्चें भी प्यारे थे। थोडी क्षण भी स्थिर न बैठनेवाले चंचल बच्चे भी माँ के पास बैठे रहते थे। श्री माँ बच्चों को खुद को चढाए हुए फूल या फूलों की माला तो देती साथ में फल और मीठाई भी देती थी। माँ इन बच्चों के साथ खेल-मजाक भी करती थी और साथ ही उनकी बातों को गंभीरता पूर्वक भी लेती थी। छोटी और बडी उम्र के बच्चों को उनकी योग्यता के हिसाब से सीख देती थी।

छोटी उम्र के बच्चों को सीख :

[1] सबसे पहली बात कि जब सुबह तुम उठो तब धरती को शीश झुकाकर प्रभु को प्रणाम करो। आपको सदाचारी यानि अच्छा व्यक्ति बनाए ऐसी प्रार्थना करो। और कहो : हे प्रभु ! आप कहाँ हो वह मैं नहीं जानता, आपको ढूँढ निकालू उतनी मुझे शक्ति दो। रात को सोने से पहले प्रभु को दोबारा प्रणाम करो। पूरे दिन में अगर आपने कोई भी अयोग्य कार्य किया हो तो प्रभु से प्रार्थना करके कहो कि ऐसा कार्य अगले दिन न हो ओर आप को सदाचारी बनाएँ।

[2] आप अपने माता-पिता और आचार्यो [गुरुजनों] का कहा हुआ माने ।

[3] अच्छे तरीके से अध्ययन करो [पढाई करो] आपका मन पढाई में लगाओ और उसमें सफल होने की कोशिश करो ।

[4] हँसो, खेलो, जब तक जी चाहे तब तक दौडो-कूदो । अगर पहली चार चीजें या बातें सही तरीके से हो जाए तो थोडी बहुत मस्ती करने में कोई दिक्कत नहीं ।

बडी उम्र के बच्चों को सीख :

बडी उम्र के बच्चों को एक बार श्री माँ ने उनकी योग्यता को देखकर सीख देते हुए कहा है : "मेरे लिए आप कितना समय दे सकते हो ? जल्दी उत्तर मत देना, सोच समझकर कहना कि मुझे तुम कितना समय दे सकते हो ? रोज पाँच या दस मिनट ? सिर्फ एक ही बार नहीं, परंतु हररोज । ठीक तब, इस पाँच मिनट के दौरान प्रभु को याद करो । दिन में कभी भी आपको अनुकूल हो उस समय को पसंद करो । अगर आप [एकांत में] शांत-स्थिर बैठ सको उतना ही काफी है ।

अगर इतना न हो सके तो सोते-बैठते, या चलते हुए प्रभु को याद करो । बिस्तर में लैटे लैटे या फिर स्नान करते समय उनको याद [स्मरण] करो । प्रतिदिन उतनी पल प्रभु की है, चाहे आप बस या रेलगाडी में मुसाफरी करते हो तभी भी; यानि किसी भी परिस्थिति में प्रभु का स्मरण करो ।

श्री माँ कहती है कि : "चार आश्रमों में से प्रथमाश्रम मतलब ब्रह्मचर्य का पालन अगर ठीक ढंग से करने में आए तो अन्य आश्रमो - गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम इत्यादि में विपरीत परिस्थिति के कारण आने वाले दुःख के भय बिना मनुष्य जीवन बिता सकता है, क्योंकि प्रथमाश्रममें ही उनके मनमें मनुष्य के अस्तित्व का ध्येय दृढता से निश्चित हो गया है ।"

बच्चों को बचपन से ही ईश्वर की ओर करने का श्री माँ के ध्येय को स्पष्ट करते हुए मिस ब्लेंका [आत्मानंदजी] लिखते है कि : "छोटे से बडे

होते हुए बच्चे, अक्लमंद युवक-युवतियाँ, मनुष्य होने का प्रयोजन, अपने आप को पाना है, वह अच्छी तरह से समज ले, और अपनी सारी शक्तियाँ मनुष्य को मनुष्य की तरह समझने में खर्च करें, अपनी खोज के लिए अक्षुण्ण रहे। उसके लिए ब्रह्मचर्य का सादा, संयमी और शिस्तबद्ध जीवन जी कर शरीर-मन पर काबू कैसे रख सकते है ऐसा भी अगर साथ साथ सिखाया जाए। और जीवन जीनेकी कला भी सीखे। फिर भले वो संसार को त्याग कर संन्यास ग्रहण करने का छोटा रास्ता अपना ले या गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम की भूमिकामें से गुजरना पडे तो भी आत्मसाक्षात्कार और अमरता का मार्ग उनके लिए खुला है।"

श्री माँ की अनोखी बोध पद्धति में संयम का भी समाविष्ट होता है। श्री माँ ने प्रतिमास में एक दिन आहार-विहार आदि में संयम रखने को कहा है। श्री माँ के इस उपदेश में से 'संयम सप्ताह' का उद्‌भव हुआ था। श्री माँ की निश्रा में हर साल एकबार निश्चित दिनों के दौरान एक सप्ताह के लिए संयम महाव्रत का आयोजन होता रहा है। इस एक सप्ताह में साधक सामूहिक साधना-ध्यान करते है; धार्मिक प्रवचनों को सुनते है, भजन कीर्तन करते हैं। वाणी, वर्तन और आहार में संयम का पालन करते है। और इन दिनों के बीच रोज रात 9 बजे के बाद श्री माँ की मौजूदगी में उनके साथ 'मातृ सत्संग' होता था। श्री माँ साधकों के अलग अलग प्रकार के और विविध प्रश्नों के उत्तर भी देती थी।

सभी धर्म के लोग श्री माँ के पास से शांति और आनंद प्राप्त कर जाते थे। ज्यादातर लोगों को ऐसा लगता था कि "माँ हमारी ही है।" 'कोई धर्म, संप्रदाय या उपदेश दूसरे से भी ज्यादा अच्छा या बूरा है' ऐसी बात या मान्यता के बारे में श्री माँ कहती थी कि : "यह सारे विवाद और संघर्ष के साथ इस शरीर का [श्री माँको]कोई संबंध नहीं। व्यक्ति जो कुछ भी कहता है वह उसके दृष्टिकोण से सच ही है। हर व्यक्ति अपने तरीके से अनंत और सर्वोच्च सत्य का आविष्कार कर सकता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति के ईश्वर को पाने के पुरुषार्थ में विविधता

और अनेकता होती है। अनंत तत्व के बहार कुछ भी नहीं।" श्री माँ का विख्यात विधान है : "जितने व्यक्ति है उतने ही ईश्वर के पाने के रास्ते हैं। इसलिए भगवान के बारे में जो कुछ भी कहा जाए या कहा गया हो वह सब सत्य है, क्योंकि वह अनंत है।" श्री माँ कहती है कि : "महत्व यह नहीं कि व्यक्ति कौन सा धर्म का है, संप्रदाय का है। परंतु वास्तव में एक ही संप्रदाय है जिस में लोग उनको ढूँढते है।" श्री माँ प्रत्येक संप्रदाय का सम्मान करती थी। वह कहती है कि : "भगवान के अलावा कोई भी विचार वृथा और व्यर्थ है। मात्र उनका ही अस्तित्व है। सभी स्वरुप उनके हैं या उनका कोई स्वरुप नहीं है। वे साकार भी है और निराकार भी है। जैसे कि जल का बर्फ और बर्फ का पानी है। जल में बर्फ न हो तो उनका आकार आया कहाँ से ? अगर जल में बर्फ होने की संभावना न हो तो बर्फ कैसे हो सके ? इसलिए सब उनमें और उनमें सब !"

'One to one' द्वारा श्री माँ को व्यक्तिगत रुप से मिलकर साधक, दर्शनार्थी आदि अपनी अपनी समस्या, मुश्किलों की बात कर सकते थे। आश्रम में उनको Private के रुप में पहचाना जाता था। विदेशी साधकों भी ट्रान्सलेटर की व्यवस्था करके श्री माँ के साथ व्यक्तिगत मुलाकात ले सकते थे। इसके लिए कईबार मिस ब्लेन्का से मदद भी ली जाती थी। इस संदर्भ में ब्लेन्का लिखते है : "व्यक्तिगत [अंगत] मुलाकात का अनुवाद करने से विविध देशों के साधकों को नजदीक से जानने की, उनकी समस्या के संदर्भ में उनकी पद्धति के बारे में अंदरुनी सूझबूझ प्राप्त करने का मुझे मौका मिला।"

समग्र भारत में परिभ्रमण कर लोगों में धर्मकी भावना जगाने या धर्म पिपासु लोगों की जिज्ञासा की संतुष्टी करने की श्री माँ की रीत अनोखी थी। उनके संपर्क में आए हुए लोगों के कल्याण के लिए वह काम करती थी। परंतु जो लोग कभी भी उनके संपर्क में नहीं आए या फिर उनको जानती तक नहीं थी ऐसे लोगों के कल्याण के लिए भी वह हंमेशां कार्यरत थी। श्री माँ के कहने के मुताबिक अशरीरी जीव भी आत्मकल्याण के मार्गदर्शन लेने के लिए श्री माँ के पास आते थे।

श्री माँने कहा था कि : "यह शरीर अपने लिए ही आया है। सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर है। द्वेत की कोई बात ही नहीं। इस शरीर ने किसी के पास से दीक्षा नहीं ली है और नाही किसी को दीक्षा दी है। तुम सब इस शरीर के पास क्यों आते हो ? सद्भावना से, परमार्थ की कहानी, कथा करने या सुनने के लिए। जो लोग संसार की वासना के साथ आते है वे लोग भी श्रद्धा के साथ आते है कि इस शरीर के पास कोई शक्ति है। शक्ति तो कोई नहीं सिर्फ ईश्वर की कृपा है कि आप जैसे सज्जन लोगों का साथ मुझे मिल रहा है। यहाँ शराबी, पापी लोग भी आते है यह सत्य है पर कुछ समय के लिए वे अपनी असद्भावना छोडकर आते हैं। जो जिस भाव से आते है वैसा ही वे लेकर जाते है।

श्री माँ की अलौकिक कृपा, करुणा के बहुत ही सारे प्रमाणभूत प्रसंग को अंकित किया गया है। यहाँ सिर्फ एक ही प्रसंग को प्रस्तुत किया है जो निम्नलिखित है :

"श्री श्री माँ आनंदमयी विलेपार्ला में थी। महान सूफी संत पूज्य श्री गुरुदयाल मल्लिकजी वहाँ से गुजरे तब श्री माँ के दर्शन करने श्री माँ के पास गए, जहाँ वे रहती थी। श्री माँ उसी वक्त अपने कमरे में चली गई थी। पूज्य मल्लिकजी विश्राम करने के लिए थोडी देर सभाखंड में बैठे। थोडी देर बाद श्री माँ का कमरा खुला और श्री माँ सिडियों से नीचे उतरती हुई दिखाई दी। पूज्य मल्लिकजीने श्री माँ के दर्शन किए और साथ ही श्री माँ की साडीकी किनारी में से पानी गिरता हुआ देखा। यह देख पूज्य मल्लिकजी को आश्चर्य हुआ। वे वहाँ थोडी देर तक खडे रहे। श्री माँ वापस अपने कमरे में चली गई। उसी समय एक टेलीग्राम लेकर एक आदमी आया। वाराणसी में एक भक्त गंगा में नहाने गया था और वह पानी में डूबते डूबते बच गया। और उसे बचानेवाले पूज्य श्री माँ ही थी इसलिए पूज्य श्री माँ की कृपा के लिए आभार और कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उसने यह समाचार टेलीग्राम द्वारा भेजा था।

पूज्य मल्लिकजी ने टेलीग्राम करनेवाले व्यक्ति का पता जान लिया और वहाँ से वे चले गए। जब उनको वाराणसी जाने का हुआ तब उस

पते के आधार पर उस सज्जन से मिलने गए, और उस दिन के अनुभव को जानने की इंतजारी दिखाई। उस सज्जन ने बताया कि वह गंगा के पानीमें डूब रहा था तब पूज्य श्री माँ ने ही खुद उनको बचाया। ऐसा उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

पूज्य माँ की साडी में से पानी गिरता था और यह द्रश्य पूज्य मल्लिकजीने अपनी आँखों से देखा था। उनको साबिती मिल गई। संतो की क्या शक्ति होती है। उनका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन हुआ।"

पोंडिचेरी 'अरविंद आश्रम' के महर्षि अरविंदजी ने कहा था कि : "मुक्त योगी को कोई वासना [इच्छा]नहीं होती। अहंकार नहीं होता। वो जो कुछ भी कर रहे हैं उनकी प्रेरणा भगवत्चेतना में से मिलती है। मानुषी चेतना में से नहीं।" उन्होंने श्री माँ के लिए कहा था कि : "She [Sri Anandamayee] remains in the state of **S**at, **C**hit and **A**nand."

श्री श्री माँ आनंदमयी अपने जीवनकाल में लोगों के कल्याण के लिए समग्र भारत में भ्रमण करती रही। श्री माँ जहाँ जहाँ गई वह तीर्थस्थल बन जाता था। हर धर्म के, संप्रदाय के लोग, धनिक, गरीब हर कोई माँ के दर्शन कर धन्यता का अनुभव करते थे। देश सहित समग्र विश्व में से नामी-अनामी, विश्वप्रसिद्ध, नामांकित महानुभावों श्री माँ के दर्शन के लिए आते थे। जिसने अपनी आत्मा की पहचान कर ली हो ऐसे आत्मोपलब्धि हांसिल हुए संतो, महात्माओं, ज्ञानीजनों के साथ भी श्री माँ का दिव्य मिलन हुआ था। ऐसे गुरुजनों में उडियाबाबा, हरिबाबा, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, अखंडआनंदजी, शरणानंदजी जैसे महानुभवो का भी समावेश होता है। उनके अलावा पोंडिचेरी आश्रम के डिवाईन मधर, योगोडा के श्री परमहंस योगानंदजी, मीरतोला के यशोदा माँ, सर्वोत्तम स्वातंत्र्यवादी श्री जे. कृष्णमूर्ति भी पधारे थे। सूर्यविज्ञान के प्रखर ज्ञाता, महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज के गुरु श्री विशुद्धानंदजी के साथ श्री माँ की मुलाकात तय हुई थी जिसकी विस्तृत जानकारी यहाँ दी गई है।

सन 1935 के दिसम्बर महिने में श्री माँ काशी आकर एक धर्मशालामें ठहरी थी। कविराज ने इन दोनों के मिलन के लिए विशेष बैठक की। गुरुदेव ने बहुत प्रेर्मपूर्वक श्री माँ का सत्कार किया। श्री माँ के साथ भोलानाथबाबा, ज्योतिषचन्द्र रोय और अन्य भक्तगण भी थे। इन सबको बैठने की व्यवस्था 'श्री विशुद्धानंद कानन' में करवाई गई थी। कविराज श्री माँ के आने की सूचना देने जल्दी जल्दी बाबा के पास गए, परंतु माँ उनके साथ हो गई और बाबाजी के पास पहुँचते ही कहने लगी : "बाबा आपकी छोटी लडकी आ गई। अब कन्या अपने पिताजी के पास आ गई।" आराम कुर्सी पर बिराजमान बाबा ने कहा : "हाँ बेटी, घर में आजा।" श्री माँ उनके लिए तय किए गए आसन पर बैठने के बजाय बाबा के सामने जमीन पर बैठ गई। श्री माँ के साथ कुछ कश्मीरी भक्त भी थे।

थोडी देर बाद बाबाजी की दृष्टि उनके उपर पडी और पूछा कि : "बेटी, यह लोग कहाँ से आए है?" कौन से देश के है? बंगाली नहीं लगते। श्री माँ ने कहा : "बाबा, आप क्या पूछ रहे हो? कि ये सब कहाँ से आए? इससे आपका क्या तात्पर्य है? ये सब एक ही जगह से आए है – जहाँ से सब लोग आते है।" "हाँ बेटी, सब एक ही जगह से आते है, परंतु बहार आते ही सब अलग अलग बन जाते हैं।" माँ बोली : "हाँ बाबा, अलग अलग सही पर एक ही भीतर [अंदर] से अलग अलग।"

श्री माँ ने ज्योतिषबाबू से कहा कि आपको बहुत समय से बाबा के बारे में और विशेष रुप से सूर्य विज्ञान के बारे में जानने की इच्छा होती थी वह अब जान कर पूरी कर लो। कविराज श्री माँ के कहने का आशय समझकर बाबा को कहने लगे : "ज्योतिषबाबू ने आपका पूरा जीवन चरित्र पढा है तब से उनको सूर्य विज्ञान के बारे में जानने की इच्छा हो गई है कि आखिर ये है क्या? कैसे होता है?" बाबाने कहा : "सूर्य विज्ञान योग की विभूति नहीं। सूर्य विज्ञान को योग के साथ कोई संबंध नहीं।

सूर्य विज्ञान से सृष्टि होती है और योग और इच्छाशक्ति से भी सृष्टि [सर्जन] होती है, यानि की बाह्य जगत का कोई भी पदार्थ दोनों तरीके से

बन सकते हैं। फिर भी दोनों में बहुत बडा अंतर है। सूर्य विज्ञान में सूर्य के किरणों को पहचानकर अलग अलग किरणों सा संघटन कर सृष्टि करनी होती है। सूर्य का नाम है 'सविता' यानि की 'प्रसव करनेवाला' समस्त जगत का आविर्भाव सूर्य से ही होता है। उससे सृष्टि, स्थिति और संहार सब होता है। सूर्य विज्ञान-विद् यह रहस्य को आत्मसात् कर लेता है और किरणों का स्वरुप पहचान कर, उनके एकदूजे के मिलझुल की प्रणाली से सीखकर उनके इच्छा की अनुसार वस्तु का सृजन [सृष्टि] कर सकता है। अलग अलग प्रकार की क्रियाएँ भी कर सकते हैं। उससे योगी की आत्मशक्ति पर कोई असर नहीं होता। अगर इच्छाशक्ति द्वारा वह सृजन करना चाहे तो उपादान बाहर से नहीं परंतु आत्मा के स्वरुप द्वारा ही लेना होता है। इसी तरह चन्द्रविज्ञान में चन्द्र से, वायुविज्ञान में वायु से और शब्द विज्ञान में शब्द द्वारा लिए जाते हैं। परंतु इच्छाशक्ति से अगर सृष्टि यानी सर्जन हो तो उसमें उपादान [बाहर से] नहीं लिया जाता,

वहाँ आत्मा ही निर्मित हैं, आत्मा ही उपादान है। इसलिए ही योग अर्थात् इच्छाशक्ति द्वारा सृष्टि सर्जन करने का विशेष रुप निषिद्ध है। क्योंकि उसमें आत्मिक हानि हो सकती है। इस विषय में उनकी क्षतिपूर्ति [Compensation] हो सकती हैं। फिर भी वे योगी की अष्ट सिद्धि में बाधकरुप पुरवार हो सकती है। परंतु सूर्य विज्ञान द्वारा रची गई सृष्टि में किसी भी प्रकार से आत्मिक हानि की संभावना नहीं रहती।

इतना कहने के बाद बाबा ने उनके शिष्य को घर के भीतर से एक छोटासा लेन्स लाने के लिए कहा। ज्ञानगंज के इस लेन्स में से सूर्य के किरणों को प्रसार करके विविध प्रकार के प्रयोग कर दिखलाए। पहले अलग अलग प्रकार की सुगंध का अनुभव कराया। अलग अलग प्रकार के फूलों की रचना बताई। इसके द्वारा कपूर और केसर भी उत्पन्न कर दिखलाया। ज्योतिषबाबू और अन्य लोगों की तो आँखें चार हो गई, वे हक्का-बक्का हो गए। इसके बाद बाबाजी और श्री माँ के बीच हुए अद्‌भुत संवाद कुछ इस तरह अंकित किए गए।

श्री माँ : बाबा यह तो प्रकृति शक्ति का खेल है। इसलिए यह भी एक प्रकार से माया का चमत्कार ही है।

बाबा : हा यह माया ही है। समग्र जगत संसार ही मायावी की माया है। उसमें क्या संदेह ?

श्री माँ : माया के एक धक्के से सभी लोग सम्मोहित हो गए है, फिर माया पर दूसरी माया क्यों दिखा रहे हो ? माया को हटा दो। [लोगों की तरफ घूमकर] बाबाजी को पकडो। उनके पास परम चीज है। परंतु वह ढक्कन के उपर ढक्कन रखकर उसका आवरण कर देते है। [बाबा की तरफ घूमकर] ज्यादा आवरण मत करो बाबा। हर आवरण दूर कर दो। परम चीज को खोलकर दे दो।

बाबा : बेटी मैं देने के लिए ही आया हूँ। मैं देने के लिए उत्सुक हूँ। हाथ भी फैला रहा हूँ, पर लेने वाला कौन है ?

ऐसा कहकर बाबाजी हँसने लगे। उसके बाद काफी सारी बातें हुई। चाय-नास्ते की भी व्यवस्था पहले से ही की गई थी। बाबाजी ने माँ को खाना खाने के लिए आग्रह किया। तब माँ ने कहा कि इस लडकी की एक आदत है कि वह अपने हाथों से कुछ भी नहीं खाती उसको खिलाना पडता है। बाबाजी एक थाली में रखे हुए फल और मीठाई लेकर कुर्सी पर से उठकर माँ को खिलाने के लिए खडे हो गए। माँ भी खडी हो गई। दोनों ने एक साथ एक दूसरे को मीठाई खिलाई। कविराज लिखते है कि : "किसने किसको पहले मिठाई खिलाई उस बात का पता न चला।" फिर जाने के लिए तैयार हुए श्री माँ को बाबा ने भावपूर्ण शब्दो में कहा : "बेटी, जा रही हो तो इस बूढे पिता को भूलना नहीं।"

जिन्होंने अपनी आत्मा को पहचान लिया हो ऐसे आत्मापलब्धि हुए संतो, महात्माओं, ज्ञानीजनों के साथ भी श्री माँ का दिव्यमिलन हुआ है। श्री माँ से मिले हुए संतों, महानुभवों की यादी बहुत लंबी है। जिस में उडियाबाबा, हरिबाबा, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, अखंडआनंद जी, शरणानंद जी

जैसे अनेक संतों का समावेश होता है। इसके अलावा पोंडिचेरी आश्रम के डिवाईन मधर, योगाडा के श्री परमहंस योगानंदजी, मीरतोला के यशोदा मा, सर्वोत्तम स्वातंत्रवादी श्री जे. कृष्णमूर्ति का भी समावेश होता है।

डिवाईन मधर और श्री माँ के बीच पोंडिचेरी श्री अरविंदाश्रम में दिव्यमौन मुलाकात हुई थी। जिनका वर्णन गुरु प्रिया दीदी ने सविस्तार अपनी पुस्तक में किया था। दोनों माँ के बीच फूलों का आदान-प्रदान हुआ था। क्रियायोगा प्रचारक और प्रसारक परमहंस योगानंद के साथ माँ की मुलाकात दो-तीन बार हुई थी। योगानंदजी की रांचीकी योगशाला में श्री माँ की मुलाकात रखी गई थी। योगानंदजी श्री माँ के बारे में लिखते है कि : "सारी क्षुल्लक आसक्तिओंको बाजू में रखकर आनंदमयी माँ अपना सर्वस्व ईश्वर के चरण में रख देती हैं। पंडितों के नीरस वाद-विवाद से नहीं, पर श्रद्धाके निश्चित तर्क से बालसुलभ संतने इस मानवजीवन के एकमात्र प्रश्न का सुंदर उपाय दिया है। ईश्वर के साथ ऐक्य की स्थापना।" उत्तर-वृंदावन [मीरतोला-अलमोडा] के महायोगी श्री कृष्णप्रेम के गुरुमाता यशोदा माँ को श्री माँ अलमोडा के आश्रममें मिली थी। श्री माँ जब यशोदा माँ से प्रणाम करने जा रही थी तब माँ ने यशोदा माँ के हाथ पकड लिए और "माँ के पास बेटी आ गई।" ऐसा कहकर उनके छाती पर सिर रख दिया। उन्होंने भी श्री माँ को आदरपूर्वक पकड रखा था। संवत 2005 के मागसर महिने में दिल्ही में श्री जे. कृष्णमूर्ति और श्री माँ मिले थे। इन दोनों के बीच छोटी मोटी बातचीत [वार्तालाप] भी हुई जिसका विषय था : "साधक या शिष्य के लिए गुरु की आवश्यकता है कि नहीं।" वार्तालाप कम समय का था पर अर्थसभर था। 'गुरु अनिवार्य है की नहीं' उस संदर्भ में श्री माँ की कही हुई दो उक्तियाँ बताने योग्य है। [1] मनुष्य अपने आप चल नहीं सकता। इसलिए उसे गुरुकी जरुरत पडती है। फिर भी गुरु के बिना भगवान को नहीं बुलाया जाता ऐसा नहीं [2] 'मैं ही ब्रह्मांड हूँ' उस विषय में निःसंदेह होगा तब कौन किसका गुरु ? जीवात्मा, परमात्मा दोनों एक हो जाएगें।"

श्री माँ कई बार 'गुरु' के बारे में भक्तो के समक्ष कुछ बातें करती और कहती : "सद्गुरु की प्राप्ति के लिए अच्छे प्रयत्न करने चाहिए, परंतु जब स्व-विकास के लिए प्रबल इच्छा जागृत हो तब गुरु अपने आप मिल जाते हैं। एकबार गुरु जब आश्रय देते है फिर शिष्य का लक्ष्य जब तक सिद्ध न हो तब तक गुरु शिष्य को छोडते नहीं। गुरु के देहत्याग के बाद भी शिष्य को गुरु की मदद मिलती रहती है।"

भक्त, दर्शनार्थी, मुलाकाती, साधक आदि समयानुसार श्री माँ के पास गुरु के बारे में भिन्न प्रश्न पूछने आते थे। श्री माँ प्रश्न पूछने वाले को समझ में आए ऐसी सरल भाषामें प्रेमपूर्वक उस प्रश्न का उत्तर देती थी जो निम्नलिखित है।

[जि. = जिज्ञासु, ज. = जवाब]

जि. : माँ कहती है कि गीता ही गुरु है। कोई राम नाम को गुरु मानने के लिए कहता है। तो कोई ऐसा मानते है कि महापुरुष ही गुरु है। इन दोनों में से किसको गुरु माने ?

ज. : आपको सहजता से कहती हूँ कि जिस पर आपको अपार श्रद्धा हो, जिसके सामने श्रद्धा से आपका मस्तक झुक जाए उनको आप गुरु मान लो। उनकी बातों का बिना सोचे पालन करो। उनको गुरु मानने के बावजूद अगर आपको उनकी बातों पर विश्वास न बैठे [शक हो] तो समझ लो कि आपने उनको गुरु माना ही नहीं। यह किस के जैसा है पता है ? बेटी की शादी तय न की गई हो तब तक दुल्हे की पसंदगी की प्रक्रिया चालू रहती है। परंतु एकबार गठबंधन हो जाए बाद में दुल्हे की पसंदगी का प्रश्न नहीं रहता। जब तक दुल्हे की पसंदगी की प्रक्रिया चालू रहती है तब तक शादी नहीं हुई। इसी तरह जिस को गुरु मानो उनकी बात विचार किए बिना माननी होगी। वही आपका हाथ पकडकर ईश्वर के पास ले जाएँगे। फिर वह एक जन्म में हो या पचास जन्म में। उनके फल की ओर ध्यान न देते हुए गुरु के आदेश का पालन करना है।

जि. : माँ, आप कहती है कि : 'वही' प्रभु, 'वही' अंश, 'वही' पूर्व, 'वही' भक्ति तो 'वही' को जानने – पाने का उपाय क्या है ?

ज. : गुरु की पनाह में जाओ । गुरु बिना चलेगा नहीं । वही आपका हाथ पकडकर ले जाएँगे ।

जि. : 'माँ, आपके गुरु कौन है ? '

ज. : देखो, यह पूछ रही है : "आपके गुरु कौन है ?" मैं कहती हूँ, कि पशु, पक्षी, कीट–पतंगे सभी मेरे गुरु है । गुरु कहने पर हम सब भगवान को ही गुरु समझते है । दुनिया में जो कोई भी स्वरुप है वह भगवान का ही रुप है । सभी मेरे गुरु है । [अपने आप को दिखाकर] यह शरीर भी मेरा गुरु है ।

जि. : जो लोग इस दृष्टिकोण से देखते नहीं है वह लोग क्या करे ? अगर भाग्यदोष के कारण मुझे कोई महापुरुष न मिले तब मैं क्या करुँ ?

ज. : आप लोग सत्संग करो । वे लोग जो ईश्वर को पाने की कोशिश करते है उन लोगों का सत्संग करो । आप सब लोग कहते हो ना कि रोग के कीटाणु एक शरीर में से दूसरे के शरीर में जा कर बीमारी फैलाते हैं । सत्संग का परिणाम भी ऐसा ही है । संत लोगों का संग करने से उनके अच्छे कीटाणु आपके शरीर के अंदर प्रवेश कर आपके विषय–वासनारुपी कीटाणु को नष्ट कर देंगे । हकीकत में तो हम सब रोगी ही हैं । सब कहते है कि, हंमेशां सत्संग और सद्आलोचना लेकर रहो तो ईश्वर को पाने का मार्ग मिल जाएगा ।

जि. : माँ, आज–कल सच्चे तत्वज्ञानी, आत्मगुरुओं का मिलना बहुत कठिन हो गया है । क्या करें ?

जि. : आपने कहा सच्चे तत्वज्ञानी, गुरु बहुत कम मिल रहे हैं । सिर पर दुःखों का बोझा उठाकर दुःखों का निवारण करने जैसा है । भगवान ही गुरु के रुपमें आकर शिष्यों के कष्ट दूर करते हैं । जैसे कि कोई गिर गया, तो कोई उसे उठा लेता हैं । इसी तरह शिष्य की

सच्ची व्याकुलता देखकर ईश्वर ही गुरु के रुप में आकर उनको मुक्त करते हैं। पर जब तक आप अज्ञान रहोगे तब तक ऐसी ही दृष्टि रहेगी। जब 'तत् दृष्टि' या 'भगवत् दृष्टि' हो जाएगी, तब कोई प्रश्न नहीं रहता। सिर्फ एक गुरु ही शिष्यके मन को साफ कर सकता है, बंधनों से मुक्ति दिला सकता हैं। आपकी दुनिया में ही देखो, जो बालक मूर्ख होता है, माता-पिता उनको भी [पढा लिखाकर] M. A. पास कराते हैं।

जि. : गुरु को ढूँढने की बात तो बहुत ही मुश्किल है। पाठशाला में अध्यापक बदलते रहते है यह सुना है, तो क्या गुरु करने के बाद उन्हें बदल सकते नहीं। क्या यह सच है ?

ज. : जैसे शिक्षक बदलते रहते है वैसे गुरु को बारबार बदल सकते नहीं। अगर शिष्य के हृदय में गुरु प्राप्ति के लिए तीव्र व्याकुलता आए तब समझना कि अब गुरु मिलने में देर नहीं है। गुरु की प्राप्ति जब होने वाली होती है तब शिष्य के हृदय में ऐसा भाव जागृत होता है कि गुरु कब मिलेंगे ? कब मिलेंगे ? गुरु कहाँ नहीं ? गुरु अंदर भी है, बाहर भी है।

जि. : माँ, आपने कहा कि : "गुरु अंदर भी है, और बाहर भी ?" यह बात समझ में नहीं आई।

ज. : अंदर, बाहर गुरु एक ही है। अंतर के जन्म जन्मांतर के अज्ञानरुपी अंधकार को गुरु हटाता है। भगवान अंतरयामी गुरुरुप से अंधकार का नाश करता है। तो क्या गुरु अंदर नहीं है ? आपने तो शास्त्र पढा ही है, उत्तरा के गर्भ में प्रवेश कर भगवान ने परीक्षित की रक्षा कैसे की थी ? इससे समझ आनी चाहिए कि ईश्वर अंदर भी है। वह अंदर भी है और बाहर भी ...।

जि. : मंत्र चैतन्य किसे कहते है ?

ज. : मंत्र-चैतन्य कैसे ? तो समझो। मैं आपको 'पिताजी' कह कर पुकारती हूँ, और आप मुझे उत्तर देते हो। नाम और नामी [मंत्र

और देवता] दोनों के बीच अभेद है। इसलिए नाम देकर पुकारो तो नामी जवाब देता है। मंत्रों के उच्चारण से अगर मंत्रदेवता अथवा इष्ट देवता का साक्षात्कार हो जाता है तो वह मंत्र को 'चेतनमंत्र' कहा है। वही 'मंत्र चैतन्य' है।

जि. : इस चेतनमंत्र करने से साधक अपने इष्टदेव से अलग देखते हैं कि अपने इष्टदेव में ही देखते हैं ?

ज. : शुरुआत में साधक इष्टदेव को अपने से भिन्न – अलग देखते हैं, परंतु मंत्रदेव और इष्टदेव का तत्व प्रकाश जब शुरु होता है तब साधक अपने आप को इष्टदेव की मध्य में देखते हैं। इसलिए कहा जाता है कि देव बनकर देवों की पूजा करनी चाहिए। तब साधक इष्टदेव की पूजा करते समय अपनी ही पूजा करता होता है यानि कि उस समय पर इष्टदेव और साधक दोनों अभिन्न हो जाते है।

जि. : 'सद्गुरु मंत्र को चेतन करने के बाद दीक्षा देते है।' ऐसा कहा जाता है। परंतु हम देखते है कि मंत्रजाप करने के बावजूद कोई भी देवता प्रकाशित नहीं होते है। तो फिर हम ऐसा समझे कि हमारा मंत्र चेतन करने में आया नहीं।

ज. : ऐसा क्यों ? दीक्षा अनेक प्रकार की होती है। चरम दीक्षा ऐसी है कि दीक्षा मात्र से शिष्य में परिवर्तन आ जाता है और वह स्थिति का लाभ कर लेता है। जब मध्यम दीक्षा में धीरे धीरे संस्कार मुक्त होकर अपने स्वरुप को पा लेता है। सद्गुरु की मंत्रशक्ति को शिष्य ग्रहण न करे तो भी वह काम कर सकती है। परंतु मंत्र प्राप्त किए शिष्ट जप–तप करे तो उनकी जल्दी से उन्नति होती है। कुलगुरु द्वारा दी गए मंत्रदीक्षा में कुलगुरु की इतनी शक्ति नहीं होती के वे मंत्र के साथ योग करा सके। फिर भी मंत्र की अपनी खुद की शक्ति होती है जो काम करती है। परंतु उसकी गति बहुत ही धीमी होती है। इसी तरह गुरु क्रम दीक्षा ही देते है। शिष्य की जैसे जैसे उन्नति होती है वैसे वैसे गुरु उसे बार बार दीक्षा देते हैं।

गुरु का शरीर मौजूदा न होता हो तो भी वह क्रम दीक्षा रुकती नहीं। क्योंकि गुरु तो कभी मरते नहीं। समय समय पर प्रयोजनानुसार प्रगट होकर काम करते हैं।

जि. : अगर दीक्षागुरु का देहांत हो जाए तो क्या करना चाहिए ?

ज. : दीक्षागुरु का देहांत हो गया है वह आपका भ्रम है। देह की दृष्टि से भले ही उनका शरीर न रहा हो पर आपके साथ जो आध्यात्मिक संबंध की गाँठ बंध गई है वह कभी भी तूटती नहीं। आप में दिव्यदृष्टि नहीं इसलिए दिखना मुश्किल हैं। एक दृष्टि से देखे तो देह नहीं है। गुरु के बिना कोई है ही नहीं। आपके गुरु ही जगत के गुरु है। समझ लो कि गुरु महाराज किसी न किसी रास्ते पर आपको मदद करते ही रहेंगे। आपको पता भी न चले। आपके गुरु महाराज ही आपके लिए सर्वस्व है। उनकी कृपा से जब आपको भगवद्प्राप्ति होगी तब पता चलेगा। जब आप ईश्वर के दर्शन के लिए हकीकत में व्याकुल हो जाओगे और ईश्वर को सच्चे हृदय से तीव्र भक्तिपूर्वक बुलाओगे तब वह अवश्य आपकी पुकार सुनेंगे और जैसा आप चाहते हो उसी भाव से उसी रुप से आप के पास आकर आपको तृप्त कर देंगे।

जि. : क्या एक से ज्यादा गुरु करना चाहिए ?

ज. : अगर आपको कुआँ बनाना हो तो एक ही जगह पर खुदाई करनी चाहिए। तभी आप शीतल और मधुर जल प्राप्त कर सकते हो। अगर आज आप यहाँ और कल कहीं और खुदाई करोगे तो अलग अलग जगहों पर कुएँ की खुदाई करने से पानी कैसे निकलेगा ? सुना है कि ईश्वर गुरु दत्तात्रयजी ने 24 गुरु किए थे। 24 गुरु शिक्षागुरु है, दीक्षागुरु तो सिर्फ एक ही होने चाहिए। हर एक के लिए एक ही रास्ता नहीं है। एक बात विशेष कर सबको याद रखनी चाहिए कि, गुरुदेव के आदेशों का पालन करना चाहिए। गुरु के आदेशों का पालन करते वक्त शरीर रहे या न रहे, एक निष्ठ

होना चाहिए। एक निष्ठ हुए बिना भगवत् – राज्य में किस तरीके से काम चलेगा ? जहाँ जाओ वहाँ सिर्फ एक ही विचार करना चाहिए कि यह सब मेरे करुणा मय गुरुदेव का ही है। यह शुद्धभाव अपने आप ही प्रगट होता है। जिन जिन महात्माओं के पास से श्री गुरुजी को सही उपदेश मिला है उसका भी अवश्य पालन करना चाहिए। पर जो कोई महात्मा द्वारा अपने गुरु महाराज के आदेशों से प्रतिकूल उपदेश मिले तो उसका पालन करना योग्य नहीं। वहाँ जाना भी नहीं चाहिए। जिससे अनिष्ट होता है। इष्ट का अर्थ क्या है ? जिससे अनिष्ट नहीं होता वह इष्ट है। जब जब महापुरुषों का सत्संग मिले, उनके उपदेश सुनने का अच्छा मौका मिले तब तब समझना चाहिए कि मैं श्री सद्‌गुरु का आश्रित हूँ। इसलिए उनकी महान कृपा से ऐसा सुयोग मिल रहा है। यह सब गुरु महाराज की कृपा का ही फल है। संसार की सारी चीजो में अपने अपने गुरु महाराज को और अपने अपने इष्ट देव को देखने की कोशिश करनी चाहिए। अपने सद्‌गुरु के वचनों का अक्षरशः पालन करना वही परम धर्म है।

जि. : ईश्वर को ही सीधे गुरु क्यों नहीं बना सकते ? बीच में दूसरे गुरु की क्या जरुरत है ?

ज. : समस्त विश्व ब्रह्मांड में गुरु एक मात्र ईश्वर ही है। गुरु शक्ति से ही भगवत् प्राप्ति हो सकती है। जब तक गुरु की सहायता न मिले तब तक भगवत् प्राप्ति बहुत मुश्किल है। बुद्धि की दौड कब तक जा सकती है ? बुद्धि से भगवान को पकडना चाहते हो ? यह कैसे हो सकता हे ? अगर गवर्नर को मिलना हो तो पहले से ही इजाजत लेनी जरुरी है, बगैर इजाजत के वहाँ कोई मिलने नहीं देगा। इसलिए भगवत् प्राप्ति के लिए गुरु की जरुरत है। गुरु की प्राप्ति के लिए भगवान का ध्यान करो। ध्यान करते करते वे प्रगट हो जाएँगे, निश्चिंत होकर भगवत् चिंतन करो। सोचो, मेरे लिए अगर गुरु की जरुरत होगी तो ईश्वर ही गुरु की प्राप्ति करा देंगे। यह बात

भी समझनी चाहिए कि जो आपके गुरु है वह सभी के गुरु है। गुरु तत्व एक ही है।

जि. : दीक्षा कब लेनी चाहिए ?

ज. : जब तक दीक्षा लेने की आंतरिक इच्छा न हो, गुरु के श्री चरणकमलों में शरण लेने की इच्छा न हो तब तक दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। हंमेशां ईश्वरको प्रार्थना करो : 'हे ईश्वर, आप मेरे लिए सद्‌गुरु दो।' किसी के कहने पर दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। अगर ली तो बाद में पछताना पडता है। अगर एक बार गुरु से दीक्षा ले ली हो बाद में उनकी आज्ञानुसार चलना पडता है। एक बार शादी होने के बाद तलाक नहीं हो सकता।

जि. : गुरु प्राप्त होने के बाद साधना करना चाहिए या साधना शुरु करने के बाद गुरु को ढूँढना चाहिए ?

ज. : आप में गुरु के बिना ईश्वर को प्राप्त करने की शक्ति कहाँ है ? पहले जमीन को तैयार करनी पडती है, उसके बाद बीज को बोया जाता है। उसके लिए सत्संग की बहुत ज्यादा जरुरत है। सत्संग से सब अच्छा हो जाएगा। सत्संग से जीवन का रंग बदल जाता है। गुरु जो आदेश दे उनका विचार किए बिना ही पालन करना चाहिए। गुरु के पास से दीक्षा लेने से पहले गुरु के पास बैठ कर सत्संग करो। उसके बाद अगर ह्रदय में गुरु करने की तीव्र इच्छा हो तो गुरु कृपा से उनका स्वीकार करो। एक बार गुरु कृपा से स्वीकार करने के पीछे गुरु के आदेशों का विचार किए बिना पालन करो।

जि. : शोभा माँ कहती थी कि सद्‌गुरु से दीक्षा लिए बिना धर्म जीवन में कुछ भी नहीं होने वाला, परंतु माँ, आप तो ऐसा नहीं कहते।

ज. : मैं भी कहती हूँ। इस शरीर की अवस्था को तो आप जानते हो। वह किसी को निरुत्साही नहीं करता। सद्‌गुरु के बिना कुछ भी नहीं होने वाला ऐसा कहकर तो हम आदमी का उत्साह शायद

कम हो जाएगा और हाथ-पैर बाँधकर बैठ जाता है। इसलिए मैं हमेशां जप-नाम करने को कहती हूँ। नाम जपते-जपते व्याकुलता पैदा होगी और तब गुरु करने की इच्छा जागेगी। गुरु का वरण करने के बाद शायद व्याकुलता का अंत न आए तब उस समय आपको शायद ऐसा देखने को मिले कि आदमी एक गुरु को छोडकर दूसरे गुरु को अपनाए। शास्त्र में आपको क्रम दीक्षा के बारे में लिखा हुआ मिलेगा। वह भी ऐसा ही है। गुरु मंत्र, इष्ट सब एक ही है। लौकिक दृष्टि से बहुत गुरु आपको देखने मिलेंगे फिर भी तात्विक दृष्टि से वह सब एक ही है। जल में हजारों तरंगे होती है पर वह जल के अलावा कुछ भी नहीं। मैं सब एक जैसा ही देखता हूँ। इसलिए तो पृथक-पृथक रुप से कुछ भी नहीं कह सकता। दरअसल बात तो यह है कि व्याकुलता चाहिए। क्षेत्र की तैयारी चाहिए। यह शरीर वह तो एक क्षेत्र है, खेत [क्षेत्र] तैयार होने के बाद ही उसमें बीज बोए जाते हैं जिससे वृक्ष उत्पन्न होता है। व्याकुलता बढाने के लिए क्षेत्र की तैयारी के लिए – मैं जप-नाम करने के लिए कहती हूँ। आप सद्‌गुरु किसको कहते हैं ?

जि. : माँ, ब्रह्मज्ञानी को सद्‌गुरु कहते है। सही ना ?

ज. : हाँ, जिसकी ब्रह्म में स्थिति है वही सद्‌गुरु है। वह, देखो ऐसे सद् गुरु की प्राप्ति जिन्होंने बहुत पुण्य किए हो उन्हीं को प्राप्त होता है। सिर्फ सत्कर्मों के पुण्यबल से ही सद्‌गुरु की प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं होता। उनकी अहेतु की कृपा की भी आवश्यक्ता रहती है। फिर भी कईबार ऐसा देखने को मिलता है कि सद्‌गुरु की प्राप्ति होते ही किसी को तुरंत फल मिलता है तो किसी को देर लगती है।

जि. : यह देर लगती है वह शिष्य के जन्मजन्मांतर द्वारा अर्जित संस्कारों का ही फल होगा क्या ?

ज. : गुरु की मरजी से सब हो सकता है। वे क्षणमात्र में ही सब भस्म

कर देते है, और अगर विलंब होता है वह भी उनकी मरजी से ही होती है।

जि. : माँ, अगर कोई अयोग्य व्यक्ति गुरु की तरह अनुचित आज्ञा का पालन करने के लिए कहे तो क्या करना चाहिए ?

ज. : साधारण मनुष्य को अपनी अक्ल का इस्तमाल करना चाहिए। परंतु गुरु के प्रति असाधारण निष्ठा रखनेवाली व्यक्ति के लिए अनुचित आज्ञा का पालन करना जरुरी है क्योंकि सृष्टि का नियम ऐसा है कि गुरु की अनुचित आज्ञा का पालन करने में अडचन खडी होगी जिससे गुरु की आज्ञा का उल्लंघन भी नहीं होगा और अनिष्ट करने से बच जाएँगे।

जि. : गुरु शिष्य से कहते रहते है कि : "मैं आपके साथ ही हूँ।" इसका क्या अर्थ होता है। कौन से अर्थ में गुरु शिष्य के साथ होते है ?

ज. : "अनेक अर्थ में गुरु शिष्य के साथ होते है।"

- गुरु विश्व ब्रह्मांड के कण कण में विद्यमान है। इस अर्थ में गुरुशिष्य के साथ है।
- दूसरी बात सोचने पर पता चलेगा कि विश्व में एक सत् चीज है और वह है गुरु और वही शिष्य है। गुरु-शिष्य में कोई अंतर नहीं। इस अर्थ में गुरु शिष्य के साथ है।
- उसके अतिरिक्त गुरु मंत्र के रुप में भी शिष्य के साथ होते हैं।
- देखा जाए तो योगी गण योग से एक ही समय कई जगहों पर हो सकते हैं। शिष्य की भलाई के लिए गुरु योग शक्ति से हर शिष्य के पास हमेशां रह सकते है, [खंड के रुप में]।

जि. : साधना पुरुषार्थ से होती है या कृपा से ?

ज. : ऐसे ही एक प्रश्न के उत्तर में श्री माँ ने कहा : "जब तक आप लोगों में शक्ति है तब तक आपको कर्म करना ही पडेगा। संसार के दस तरह के विषयों [कामों] को लेकर आप कर्म करते हो इसी

तरह धर्म के संबंध में भी कर्म करना पडता है। परंतु यह याद रखो कि धर्म के संदर्भ में जो भी कार्य हो रहा है यह सब अज्ञानपूर्ण है और यह कार्य भी वही [ईश्वर] करवा रहे हैं। परंतु इस तरह कर्म करते करते लोगों को अपनी शक्ति की क्षमता की समज आती है। अपना कर्तृत्व कुछ भी नहीं है यह ज्ञात होते ही आत्मसमर्पण हो जाता है और तब ईश्वर के प्रति निर्भरता आती है। उस समयमें भी कर्म का अंत नहीं आता। उस समय पर ज्ञान का कर्म चलता है। उसी समय समझ में आता है कि सब [ईश्वर ही] वही कराता है। उस समय पर भी अहंज्ञान रहता है। इसलिए उसे कर्म कहते हैं। इस अवस्था में जो कर्म होता है उसी को पुरुषार्थ कहा जाता है। वही परम पुरुष का कर्म है। जब प्रवाह में अपने आप को छोड देते हो तब ही वास्तविक पुरुषार्थ की अवस्था आती है। उस समय जो कर्म होता है वही परम पुरुषका कर्म है। उसके पहले जो भी कर्म होता है वह सारे अज्ञानता के कर्म है।" [इस संदर्भ में श्री रमण महर्षि ने कही हुई बात को कहने से मैं अपने आपको नहीं रोक पाता। महर्षिने कहा है कि : "जब आप में से अहंकार मीट जाएगा या अहंकार से थोडा उपर आ जाओगे तब आपको समझ में आएगा के कोई Divine force आपके पास से काम करवा रहा है।"] कृपा के संदर्भ में श्री माँ ने कहा है कि : "पूर्वजन्म में आपने जो भी सत्कार्य किया होगा वह इसी जन्म में कृपा के स्वरुप में आपके पास आता है। पर आप यह सब जानते नहीं हो इसलिए आप उसे कृपा मानते हो। इस के अलावा साधक साधना करते करते एक ऐसी अवस्थामें आ जाते है और उनको समज में आता है कि, यह सब उनको कृपा के फल स्वरुप लगता है। इस में साध्य-साधन कुछ नहीं। यही कृपा की स्थिति है। इस के बाद जो अवस्था आती है उसमें कृपा नहीं होती उस समय वह एक तत्व रहता है। कौन किस के उपर कृपा करेंगे ?" श्री माँकी इस बात से यह समझ में आ गया कि एक तरह से पुरुषार्थ लगता है

और दूसरी तरफ से कृपा लगती है। ईश्वर प्राप्ति की दिशा में ध्यान, मान्यता आदि कर्म जिसको हम पुरुषार्थ कहती हैं, इन सभी को श्री माँ 'अज्ञानकर्म' कहती है। परंतु यह करते करते साधक को जब यह पता चलता है कि स्वयं का प्रयत्न कुछ काम का नहीं और वह विराट समक्ष खुद शरणागत होता है तब सच्चे पुरुषार्थ का आरंभ होता है, मतलब तब साधक को समझ में आता है कि एक परमपुरुष की इच्छानुसार ही संसार के समग्र कार्य संपन्न होते है। वैसे दूसरे तरीके से तो यह कृपा की अवस्था है क्योंकि उनको समझ में आ जाता है कि विश्वपति की कृपा के अलावा इस संसार में कुछ भी नहीं हो सकता। इस स्थिति में अहंज्ञान रहता है। इसलिए शायद उसे कृपा की स्थिति कहते है। अहंज्ञान जब लुप्त हो जाता है तब जो बाकी रहता है वह अव्यक्त परमतत्व है। यहाँ दो बातें ध्यान रखने योग्य है : एक तो पुरुषार्थ की गति से हजार गुना अधिक शरणागति – आत्मसमर्पण की है। इसलिए संपूर्ण शरणागति व्यक्ति के अहंकार को निर्मूल कर उसे आत्मस्वरुप का ज्ञान कराता है।

कई सालों से माँ की सेवा करनेवाले, माँ के करीब रहनेवाले, पू. स्वामी श्री भास्करानंदजी रचित 'वाङमयी माँ' पुस्तक में श्री श्री माँ के यह शब्द लिखे गए है : "अगर एक बार गुरु आश्रय दे तो जब तक शिष्य का लक्ष्य पूर्ण न हो तब तक गुरु जाते नहीं है। यह प्रश्न ही नहीं बनता कि वह जाएँगे कहाँ ? उनको क्या आने-जाने का कोई प्रश्न है ? समझे नहीं ? मतलब जहाँ गुरु कहोगे वहाँ शरीर [देह] का प्रश्न आता ही नहीं, क्यों की वहाँ शरीर रह ही नहीं सकता। और एक बात है कि, गुरु के चले जाने के बाद भी आप अगर देह के रुप में उनको न देखो तो भी सर्वदा, हरपल-जब तक आपका लक्ष्य पूरा न हो तब तक का रास्ता आपको देकर ही जाएँगे। जाएँगे का मतलब क्या ? वह कहाँ जाएँगे ? जाने का प्रश्न ही नहीं है वह तो प्रकाशित हो जाएँगे।"

श्री माँ के कई अर्थपूर्ण विशेष विधान थे जैसे : "जो हो जाए", माँ

कहती थी कि जो होनेवाला है वह होकर ही रहता है। तब ऐसा मानकर उद्वेग या अशांति लाए बगेर कर्म करते रहना चाहिए। ईश्वर की मरजी के आगे अपना सबकुछ न्यौछावर करते रहना चाहिए।" दूसरा विधान था "सदा खुशी में रहो – आनंद में रहो" "बनत बनत बन जाई।" माँ हर मनुष्य को सदा प्रसन्न रहने को कहते, वह कहते कि खूब हँसो, अगर हँसी न आए तो कुत्रिम हँसी हँसो। एक बार माँ की पवित्रवाणी का ध्वनिमुद्रण [Recording] करते समय माँ बहुत हँसी थी। यह मुक्त, पवित्र, दिव्य, सरल हास्य आज भी श्री माँ की 'लोंग प्ले रेकोर्ड' में ध्वनिमुद्रित है।

श्री माँ पढी-लिखी नहीं थी परंतु समग्र विश्व के विद्वानों, पंडितो, दिग्गजों को उन्होंने पढाया -लिखाया है। आध्यात्मिक प्रश्नों को हल कर उनको मार्गदर्शन दिया है। श्री माँ विदेशी भाषा जानते नहीं थी, फिर भी समग्र विश्व में से लोग आकर्षित होकर श्री माँ के पास आते थे। सन 1929 में भारतीय फिलोसोफिकल कोंग्रेस का अधिवेशन ढाका शहर में हुआ था। इस अधिवेशन में आए हुए देश-विदेश के दार्शनिक श्री माँ से मिलने गए थे। यह मुलाकात तीन घंटे तक चली थी। इन दार्शनिकों के प्रश्नों के उत्तर जिस तरीके से श्री माँ ने दिए थे उनके संदर्भ में डो. महेन्द्र सरकार लिखते है कि : "There was no hesitation, not the least conscious thinking, not the least sign of nervousness..." आए हुए सभी दार्शनिक माँ की तेज बुद्धि, अद्‌भुत उत्तर शक्ति और वकृत्वशैली [बोलने की छटा] से बहुत प्रसन्न हुए थे। 'As the Flower Sheds its Fragrance' नामक पुस्तक में ब्लेन्का - Blanca नामक [श्री माँ के द्वारा दिया गया नाम आत्मानंद] श्री माँ की विदेशी महिला भक्त लिखती हैं कि : "पूरे भारत में उनका [श्री माँ का] अविरत भ्रमण पचास सालों तक चला। लाखों भारतवासीओंने और सेंकडों विदेशीओं ने उनके दर्शन किए। उन्होंने भजन-कीर्तन को प्रोत्साहित किया। और कभी कभी मधुर मनलुभावन गीत भी गाए हैं। उन्होंने कभी भी प्रवचन नहीं किए परंतु वह भक्तों के अनेक प्रश्नों के उत्तर देते थे। उनकी कोई

भी पद्धति निर्बन्ध सहजता से मधुर वाणी में सीधे दिलमें उतर जाए ऐसे सचोट उत्तर बडे बडे साधुजन, विश्वविख्यात पंडितो, तत्त्वदर्शिओं, व्यापारियों, विदेशी मंत्रीओं, राजा-महाराजाओं को रानीओं को, कलाकारों, डोक्टरों, वकीलों, राजकारणिओं को मंत्रमुग्ध कर देते है। उनके ज्ञान की गहनता और उनकी अभिव्यक्ति की बहती धारा से सभी प्रभावित होते।

बहुत लोगों को ऐसा प्रश्न सताता है कि अच्छे लोगों को कष्ट क्यों होता है ? ऐसे एक प्रश्न के उत्तर देते हुए माँ ने कहा था : "आप लोग यह नहीं समझ रहे हो कि ईश्वर ऐसा क्यों करता है। उदाहरण के तौर से एक छोटे बच्चे को माँ साफ सुथरा कर अपनी गोदी में लेना चाहती हो तो क्या एक वह दिन हाथ धोएगी, दूसरे दिन पैर साफ करेगी। या फिर उसे पूरी तरह साफ कर के उसे अपनी गोदी में लेगी ? अच्छी तरीके से बच्चे को नहाने धोने के लिए बच्चे को कष्ट जरूर हुआ होगा। आप लोगों को यह पता नहीं है कि व्यक्ति में कई कितने जन्मों के संस्कार होते हैं। अगर यह सारे संस्कार एक ही जन्म में देकर ईश्वर दूर करे तो क्या इसमें भगवान की कृपा नहीं ? जो कोई व्यक्ति शुभकार्य करता है वह कभी व्यर्थ नहीं जाता। कुएँ की खुदाई करते है तो तुरंत पानी नहीं मिलता परंतु क्रमशः धीरे धीरे आप पानी के नजदीक जाते हो।"

माँ स्वभाव से कोमल थी। पर कभी कबार भक्तोंके कर्म की वजह से कठोर बन जाती हैं। वे कहती है कि : "शासन कठोर और कोमल दोनों प्रकार के होने चाहिए। जो कठोरता के योग्य होता है वही कठोरता सहन कर सकता है। उसके उपर कठोर हो सकते है। जैसे की पेड काटने के लिए पहले कुल्हाडी चाहिए, फिर हसिया [Sickle] चाहिए और छोटे छोटे पत्तोंको तो हाथ से तोडे जा सकते है। सामान्य रुप से माँ किसीको दुःख पहोंचे या किसी को ठेस पहोंचे ऐसा कुछ भी कहती नहीं थी। और अगर ऐसा हो तो वह जवाब देने को टालती थी। फिर भी कभी कभी आवश्यकता खडी हो जाए तो जो कुछ भी कहने जैसा हो वो प्रश्न पूछने

वाले को स्पष्ट सुना देती थी। उहादरण के तौर पर एकबार एक श्रीमंत पुरुष को श्री माँ ने कह दिया था कि : "यह आपकी आत्म वंचना है।" आगे हमने देखा की दिनमें एक निश्चित समय पर हररोज एक अखंड पल को श्री माँ की माँग को स्वीकार करने की असमर्थता दिखानेवाले भारत के भूतपूर्व वडाप्रधान स्व. पंडित जवाहरलाल नहेरू को श्री माँ ने कह दिया था : "पिताजी तो उपाय भी शक्य नहीं।" श्री माँ ने सुभाषचन्द्र बोझ को देश की सेवा के साथ अपने अंदर की देश की सेवा करने के लिए कहा था।

"मैं तो किसी को भी मेरी बात सुनो या मानो ऐसा कहती नहीं हूँ। आप लोग इस शरीर के पास जो बुलाते हो, वही कहती हूँ। इन बातों में जिसको जो जो चाहिए उसको अपनी आवश्यक्ता के अनुसार मिल जाता है। तो किसीको कुछ भी मिलता नहीं। न मिलने क़ा कारण यह है कि उसको कोई आवश्यकता नहीं है।" "इस शरीर में से सच्ची बात निकलती रहती है। इससे कोई संतुष्ट हो के ना हो यह उनका लक्ष्य नहीं।"

श्री माँ का जल, स्थल, वृक्ष के साथ एकरुपता का भाव और "मैं बालिका हूँ" ऐसी विनम्रता, श्री रामकृष्ण परमहंस देव की और मधुरकंठ में माँ द्वारा किया भाव सभर कीर्तन 'हरिबोल', 'हरिबोल', श्री चैतन्य महाप्रभुजी की याद दिला देता था। कभी कभी माँ नमाज़ पढते तब उनके मुख में से अपने आप शुद्ध अरबी भाषा में कुरान की कल्मों के पाठ होने लगते थे। 'आप कौन हो ?' ऐसे प्रश्न के उत्तर में वह कहती थी कि : "आप जो मानते हो वह मैं हूँ।" एकबार एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था कि : "मैं पूर्ण ब्रह्म नारायण हूँ।" दूसरी बार भी यह पूछा गया तब श्री माँ ने कहा : "महादेवी हूँ", और तीसरी बार यही प्रश्न पूछने पर भी माँ ने कहा : "पूर्ण ब्रह्म नारायणी हूँ।" तब सबने श्रीमाँ से कहा : "अच्छा अब आपका परिचय दो।" तब माँ ने खडे होकर भोलानाथजी के मस्तक से लेकर पैर तक उँगली से स्पर्श किया तब भोलानाथजी अचानक समाधि में चले गए। इस तरह एक घंटा बीत गया। सब निःशब्द और भयभीत थे। भोलानाथजी को ठीक करने के लिए

जानकी बाबू ने श्री माँ से बिनती की तब श्री माँ ने पहले जैसे उँगली से स्पर्श किया। भोलानाथजी स्वस्थ हो गए और कहने लगे : "अरे! मैं कहाँ था ? कैसा आनंद... जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।"

श्री माँ को जब पूछा गया कि क्यों श्री माँ के मुख से अलग अलग उत्तर मिलते हैं ? तब श्री माँ ने कहा : "संबंधीओ में किसी का स्त्रीभाव है, तो किसी का बहनभाव है। इसलिए उनके पास उनके अनुरुप स्त्रीलिंग शब्द निकलता है, परंतु वास्तविक रुप 'नारायण' शब्द समुचित रुप से प्रगट हुआ। 'महादेवी हूँ' इस जवाब के संदर्भ में श्री माँ ने कहा था : "जिस समय जो देवी-देवता का पूजन किया जाता है उस समय पुजारी को उनके भावरुप के समान होना पडता है। मैं उस समय पूजा कर रही थी। इसलिए मुख में से ऐसे शब्द निकले थे।"

श्री माँ ने अपने आपमें हुआ विभूति-प्रकाश के अलग अलग स्तरों की बात की हैं। "पहले अज्ञान भाव से विभूति-प्रकाश होता था, जिसमें रोगी को स्पर्श किया तो वह रोगमुक्त हो गया। परंतु मेरे स्पर्श से वह रोगमुक्त हो गया ऐसी जानकारी मुझे नहीं थी। कभी कभी विभूति-प्रकाश ज्ञान और अज्ञान में निश्चित भाव से हुआ था। जैसे की रोगी को देखकर मुझे लगा कि पहले स्पर्श करने से उसका रोग दूर हो गया था, उसी तरह अभी भी रोगी को स्पर्श करने से उसका रोग दूर हो जाएगा ओर स्पर्श करने से उनका रोग दूर हो गया।"

"कभी कभी ज्ञान के साथ विभूति प्रकाश होता है, मतलब कि निश्चित रुप से मैं नहीं जानती कि मेरे स्पर्श से रोगी का रोग दूर हो जाएगा और स्पर्श करने से रोग दूर भी हो गया। अब यह विभूति मेरे स्वभाव में आ गई हैं। विभूति स्वभावमें आ गइ यानि कि स्वभाव की प्रेरणा से जो होने वाला है वह होकर ही रहता हैं। यहाँ इच्छा, अनिच्छा नामकी कोई चीज नहीं होती।" श्री माँ ने कहा था कि बचपन से श्री माँ की यह अवस्था रही है। अज्ञान का भाव रहा है। परंतु वह भी कैसा ? जान कर भी न जानने के समान।

योग विभूति की घटनाओं के संदर्भ में श्री माँ ने उनकी आध्यात्मिक वाणी को लिपि बद्ध [लिखनेवाले] करनेवाले अमूल्यकुमार दत्तगुप्त को कहा था : "उनमें [श्री माँ को] कोई इच्छा या अनिच्छा नहीं । जो होनेवाला है वह अपने आप उनके शरीर के अंदर से होता है।" विशुद्धानंदजी ने कहा था : "योगी को किसी भी कार्य करने के लिए इच्छा नहीं करनी पडती। उनका सब कार्य महा-इच्छा द्वारा स्वतः हो जाता है।"

एक बार प्रा. श्री अमूल्यकुमार दत्तगुप्त ने श्री माँ से पूछा था : "माँ जब तुम अखंड रुप में रहती हो तब क्या हम लोगों को देख पाती हो ?"

इसके जवाब में जो कुछ भी श्री माँ ने कहा वह श्री माँ का आत्म परिचय समान है। श्री माँ ने कहा था : "तुमने पूछा कि मैं अखंड रुपमें तुम लोगों को देख पाती हूँ या नहीं । मेरा कहना है, तुम लोग ही क्यों, जिसने कभी मुझे नहीं देखा है, सुना है, उसकी आवश्यक्ता होने पर उसे भी मैं देख लेती हूँ, उसके अभाव को दूर कर देती हूँ।" अमूल्यकुमार ने प्रश्न किया : "इससे स्पष्ट है कि जब हम तुम्हारे विषय में चिन्ता करते हैं तब तुम हम लोगों को देख पाती हो ?" श्री माँ ने जवाब में कहा था : "हाँ जिस प्रकार टोर्च जलाने पर समग्र चीजें दिखाई देती है, तुम लोग मेरी चिन्ता करते हो तब उसी प्रकार तुम लोगों की मूर्तियाँ मुझमें स्पष्ट रुप से प्रकट हो जाती है।"

श्री माँ की लीला के अंतिम तबक्के में प्रवेश करने से पहले श्री माँ ने कही हुई कुछ आध्यात्मिक विभावनाओं की स्पष्टता कर लेंगे :

- जो व्यक्ति स्वभाव में स्थिर होकर अर्थात् "मैं कौन हूँ ?" उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके ईश्वर के रसपान में रसवान होकर रहता हैं, उसे स्वभाव की स्थिति कहते हैं। इस अभाव का स्वभाव कम नहीं होता [सांसारिक चीजों की प्राप्ति] परंतु स्वभाव का अभाव अगर हो तो हमेशां के लिए यह अभाव दूर हो जाता है।
- प्राणायाम करते समय साँस लेने के साथ ही [आलोम] व्यक्ति परमशक्ति को स्वयं के अंदर आमंत्रण देते है, प्राप्त करते है उनको पा लेते हैं। और

साँस बाहर निकालते वक्त [विलोम] व्यक्ति को ऐसी भावना रखनी चाहिए कि खुद अहंकार को बाहर निकालता है।

- मन लगाकर काम करना चाहिए और अन्य मनस्क भाव से नाम लेना चाहिए, इन दोनों में अवश्य फर्क तो है ही। मन से नाम लेने से शीघ्र फल मिलता है, जब अन्य मनस्क [बिना मनके] भाव से नाम लेने से फल शीघ्र प्राप्त नहीं होता।
- हर समय गुरु की कृपा बरसती ही रहती हैं। परंतु तुम्हारा पात्र अगर अधोमुखी हो तो गुरु की कृपा को संभाल नहीं सकता।
- भगवत् शक्ति के साथ जीव की शक्ति को जोडना उसका नाम दीक्षा है। ऐसा मत सोचना कि संस्कृत शब्द से यानि मंत्रो से दीक्षा न ली हो तो ईश्वर की भक्ति नहीं हो सकती या कोई काम नहीं होता। आपको जो नाम अच्छा लगे उनका स्मरण करते रहो। आपको अवश्य आवश्यक्ता के अनुसार सब मिल जाएगा।
- सिर्फ वाणी में संयम कर विषयों का चिंतन करने में आए तो ऐसी परिस्थिति में मौन धारण करने से बोलना ज्यादा अच्छा है क्योंकि अगर बलपूर्वक [जबरस्ती] वाणीमें संयम करने में आए और अगर मन में विषय चिंतन होता रहे तो वह इन्द्रियों को आघात पहुँचाकर शरीर में रोग उत्पन्न कर देता है।
- जितना हँसा जाए इतना हमेशां हँसा करो। जिस से शरीर की जड ग्रंथियाँ खुल जाएगी। पर याद रखो सिर्फ बाहर के हास्य [दिखावे के] से काम नहीं चलेगा। अंदर और बाहर दोनों का ऐक्य होकर हँसना पडे।
- प्रतिष्ठा रहित कर्म वह निष्कर्म – इस में अपने नामकी यश की आकांक्षा नहीं रहती और दूसरे किसी और प्रकार के फल की इच्छा भी नहीं रहती।
- जहाँ वासना है वहाँ स्वरुप स्थितिका लाभ नहीं होता। वासना हो और अगर शरीर पात हो जाए तो Return Ticket कटवाकर वापस आना पडता है।

- माया यानि 'मैं आया'। कहने का मूल अर्थ यह है कि जब तक 'मैं' है तब तक माया हैं। इस 'मैं' को हटा देने से अद्वैत का अनुभव होता है।
- अपने अंदर अखंड आनंद, अखंड शांति है, इसलिए अखंडआनंद को चाहो, वही जीव का स्वभाव है।
- ध्यान यानि विचार मात्रा की विस्मृति करते करते उनमें ही निमग्न होना, एकाकार हो जाना।
- प्रार्थना का परिणाम अनिवार्य रुप से मिलता ही है। कभी तो आपने सोचा वैसा नहीं भी मिला, परंतु प्रार्थना आपको परमात्मा के साथ जोडती है।
- सत्य प्राप्ति करना वहीं मनुष्य जीवन का सिर्फ एक लक्ष्य होना चाहिए।
- अगर सत्य को प्राप्त करना हो तो सारी मुसिबतों में, मुश्किलों में धैर्य रखना चाहिए। विघ्नों, कष्टों, मुसिबतों के समय ही धैर्य की आवश्यक्ता होती है।

सुबह - रात की प्रार्थना

"सुबह बिस्तर से उठते समय सोचो - यंत्र रुप से आप हो या आपका ही यंत्र। इस यंत्र से आप नींद से जागे तब से पूरा दिन शुभ कार्य ही हो। सब कर्म आपकी ही सेवा और सेवा में ही रहे। मन में सद्विचार धारा, भगवान का नाम-स्मरण और प्रणाम।"

रात को सोते समय की प्रार्थना : पूरे दिनभर आपने जो भी किया वो आपके चरणों में समर्पण। बाद में पूरे दिन में आपने जो जो कार्य किए उनको बारीकी से देखना। अगर उसमें भूल हो गई हो, तो प्रार्थना करो, - क्षमा मांगो और अब फिर से ऐसी भूल न हो। सभी कार्य जैसे शुद्ध हो। नाम स्मरण, प्रणाम करना, मन मनमें ही उनका ध्यान कर उनके चरणों में मस्तिष्क झुकाना। अंत में "मेरा शरीर, मन सब ही आपके चरणोंमें अर्पण" इस भाव के साथ सो जाना।

श्री गोपीनाथ कविराजजी ने कहा था : "श्री माँ साधक नहीं, सिद्धि नहीं, उसी तरह श्री माँ का जन्म कर्म फल के परिणाम स्वरुप भी नहीं है।"

तो फिर माँ है कौन ? बार बार ऐसा प्रश्न पूछते पूछते एकबार श्री माँ ने उनकी मधुर वाणी में प्रत्युत्तर दिया : "ज-नम... न मेंजा... म का नुं मैंने किया ज का जा किया। जा यानि जन्म - मेरा जन्म नहीं' 'नमस्कार = न में आकार' यानि मेरा आकार नहीं [रुप नहीं] मतलब मैं परब्रह्म हूँ। एकबार माँ ने कहा था : "सृष्टि, स्थिति और लय से पहले भी मैं थी।" गोपीनाथ लिखते है : "माँ का सत्य परिचय जो भी हो वह साधारण मनुष्य उनकी विशेष कृपा के बगैर लेश मात्र भी जान सकते नहीं। फिर भी माँ का चरित्र और उपदेश से माँ का तत्व समझ न सके तो भी चरित्र में से आत्मोन्नति के मार्ग की शोध मिल सकती है और उपदेश द्वारा साधन और आचरण के विषय में ज्यादा शिक्षण मिल सकता है।"

प्रश्न यह है कि श्री माँ को कैसे जाना या समझा जा सकता हैं ? इसका अति सुंदर और अद्‌भुत मार्ग श्री गोपीनाथ कविराज ने हमें बताया है। उनके स्वयं के शब्दों में देखा जाए तो वह इस तरह है : "खुद के स्वल्प और सीमित ज्ञान द्वारा माँ के स्वरुप का निर्णय करने के लिए हमारा तैयार होना एक प्रकार का व्यर्थ प्रयत्न है। अनुमान और कल्पना से परे सत्य का हृदय हम सबको दृढता के साथ ग्रहण करना चाहिए। माँ को माँ की तरह गंभीर और आंतरिक भाव से स्नेह करना और उसी तरह गंभीर और आंतरिक भाव से करते करते ही माँ के वास्तविक स्वरुप के साथ स्वयं को क्रमशः आत्मियता के साथ मिलन करने की चेष्टा करना वही हमारा कर्तव्य होना चाहिए। इसका मैंने बहुत साल पहले ही अनुभव किया था और आज भी करता हूँ। मेरा दृढ विश्वास है कि इस तरह स्नेह करने से ही माँ हमारे आधार और योग्यता के अनुसार हमारे नजदीक अपने स्वरुप का पूर्णतर स्वरुप से क्रमशः प्रकाश करेंगे।

शुक्रवार 27 अगस्त, 1982 के दिन श्री माँ ने महा प्रयाण किया। तब पूरे देश के वर्तमान पत्रों ने दूसरे दिन पहले पन्ने पर माँ की तस्वीर के साथ श्री माँ के ब्रह्मलीन होने का समाचार संसार को दे दिया था।

श्री माँ अपने साधको को यह बार बार कहती थी : "भगवत् नाम स्मरण करते रहो। भगवत् नाम स्मरण करते रहो। भगवत् नाम स्मरण करते

करते इस संसार रुपी जेल के दिन कट जाएँगे। खुद तो अच्छे बनने का प्रयत्न करेंगे, परंतु वह जहाँ भी हो उनको बुलालेना। जिनके कर्मो के साथ धर्म का संबंध नहीं है उनको ईश्वर-भजन करने के लिए बडी नम्रता के साथ बिनती करो। और जो भगवान को विशुद्ध भाव से हासिल करने के लिए प्रयत्न करता है उनको इस भाव में मिलो और जिसने ईश्वर का महिमा जाना हो उनका संग करके खुद का जीवन कृतार्थ करो।"

आध्यात्मिक उन्नति : क्रमबद्ध सीढियाँ

श्री गोपीनाथ कविराज ने श्री माँ के जीवनअभिनय-जीवनलीला-जीवननाटक के क्रमबद्ध सीढियों को वर्गीकृत किया है, जो सब के लिए बहुत ही उपकारक मार्गदर्शक होंगे। इस विचार को ध्यानमें रखते हुए उसे इस पुस्तिकामें प्रस्तुत किया गया है।

1. अंतर की तीव्र व्याकुलता ही भगवत् प्राप्ति में मुख्य सहायक है। उसे हासिल करने के लिए दिनों के दिन, महीनों के महीने, बरसों के बरस, हर समय हर अवस्था में-सोते, जागते, सपनों में, उठते, बैठते, घुमते-फिरते सारे कार्यो की शुरुआत में और अंत में मन में उसके लिए एक वेदना जागृत रखनी चाहिए। संसार के सुख-दुःख, आराम, आडंबर कुछ भी हृदय भूल न सके।

2. इसके परिणाम स्वरुप क्रमशः चित्त उसी की चिंता में तन्मय होकर रहता है और जो भी कोई चिंता अडचण के रुप में देखी जाए तो उस से अनास्था उत्पन्न होने लगती है। इसी तरह भगवत् भावना के विरोधी आचरण और वृत्ति के प्रति वैराग्य जन्म लेता है और सांसारिक विषयों के प्रति धीरे धीरे अनासक्ति पैदा होती है।

3. उस समय एकांत में कुछ समय प्रभु के चिंतनमें रहना चाहिए। उपदृष्टा का अभाव पता चलने का कोई भी कारण नहीं हैं। क्योंकि अभी तुरंत हृदय ही उपदृष्टा का कार्य करता है। जिसको जो रुप, जो नाम, जो भाव अच्छा लगे, उसके लिए उसी प्रथमावस्था में स्मरण के लिए अवलंबनीय है। दीक्षा न ली हो तो भी कोई बात नहीं। धीरे धीरे

भगवत् स्मरण का समय, मात्रा, तीव्रता आदि बढानी चाहिए। या अपने आप ही बढ जाती है। गुरु, मंत्र, देवता आदि की आवश्यक्ता होती है, तब उसको जिसकी आवश्यक्ता है वह आविर्भूत होती है। अविच्छिन्न स्मृति वहीं ध्यान और उपासना है। जिससे वह प्राप्त हो उसके लिए मन को एकाग्र करना पडता है। उसमें करुणा और दृष्टि रखकर, फल की आशा को छोडकर यथाशक्ति अपने आप प्रयत्न करना चाहिए। आहार शुद्धि, संयम, वाक्संयम, मौन, विचारशून्यता, कर्तव्यनिष्ठा, सदाचार, सत्य, दया, प्रेम, क्षमा और विचार - सारे सद्गुणों चित्तक्षेत्रों में धीरे धीरे प्रयोजनानुसार उत्पन्न होता है। ऐसे धीरे धीरे विशुद्ध भाव का उदय होता है।

4. धीरे धीरे मैं तू का भाव कम होता जाता है। व्यवहारक्षेत्र में भी मैं-तू का भाव विचार चला जाता है। समस्त जगत ही एक अखंड परिवार है ऐसा मालूम होने लगता है।

5. धीरे धीरे भावग्रंथियाँ खुल जाती है। मुक्तशक्ति स्वाधीनभाव से खीलती रहती है। संस्कार के बंधन तूट जाते हैं।

6. इसी तरह साधना की परिपक्वता के खंड भाव में अनंत और अखंड सत्ता का प्रकाश दिखता है तब सदा के लिए खंडभाव और खंडकर्मो का समाधान हो जाता है। इस विच्छिन्न में अविच्छिन्न सत्ताके साक्षात्कार की बात कही गई है। साक्षात् अनुभूति शास्त्रीय वाक्य और युक्ति के द्वारा उत्पन्न परोक्ष ज्ञान मात्र नहीं। इसलिए जिस में यह बोध जन्म ले उनके चित्त में सांप्रदायिक्ता लेशमात्र न रह सके। [किसी संप्रदाय का अनुसरण कर साधना होती है तो वह आगे जाते जाते जब ज्ञान प्रगट हो तब संप्रदाय के बंघन से परे हो जाता है।] और व्यक्ति को अनंत विभिन्न भाव में ही एक ही परम सत्ताकी जानकारी मिलती है। वह कोई भी विशिष्ट भाव से बद्ध हुए बगैर उनकी लीलाका अनुभव कर सकता हैं।

• • •

परिशिष्ट : 1

हृदयवासिनी

—श्री ज्योतिषचन्द्र रोय [भाईजी]

[जय] हृदयवासिनी शुद्धा सनातनी श्री आनंदमयी माँ।
भुवनउज्ज्वला जननी निर्मला पुण्यविस्तारिणि माँ।

राजराजेश्वरी स्वाहा स्वधा गौरी प्रणवरुपिणी माँ;
सौम्य सौम्यतरा सत्या मनोहरा पूर्ण परात्परा माँ।

रविशशिकुंडला महाव्योमकुं तला विश्वरुपेणी माँ;
अैश्वर्यभाति मा माधुर्य प्रतिमा महिमामंडिता माँ।

रमा मनोरमा शान्ति-शान्ता-क्षमा सर्वदेवमयी माँ;
सुखदा वरदा भक्तिज्ञानदा कैवल्यदायिनी माँ।

विश्वप्रसविनी विश्वपालिनी विश्वसंहारिणी माँ;
भक्तप्राणरुपा मूर्तिमंतकृपा त्रिलोकतारिणी माँ।

कार्यकारणभूता भेदाभेदातीता परमदेवता माँ;
विद्याविनोदिनी योगिजनरंजनी भवभयभंजिनी माँ।

मंत्रबीजात्मिका वेदप्रकाशिका निखिलव्यापिका माँ;
सगुणा स्वरुपा निर्गुणा नीरुपा महाभावमयी माँ।

मुग्ध चराचर गाहे निरंतर तव गुण मधुरि माँ;
प्राणे प्राणे प्रणमि[श्री] चरणे जय जय जय माँ।

डाको माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
कहो माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
गाओ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
भजो माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
जपो माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
डाको माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
माँ माँ माँ माँ

परिशिष्ट : 2

।। श्री श्री माँ आनंदमयीस्तवः ।।

• प्रा. अे. जी भट्ट

यज्ज्जोतिः परमं विभाति सततं सर्वान्तरावस्थितं
यत्स्वान्ते विधुनोति मोहतिमिरं कृत्वा प्रबोधोर्मयः ।
यद्दुर्गात्रिपुराम्बिकेति विविधां नूनं समाख्यां वह-
न्नाम्नाऽऽनंदमयीति भात्यनुपमं तन्मंगलायास्तु नः ।।

सबके हृदयमें बिराजमान परम ज्योति जो निरंतर झगमगा रही है, जो आत्मज्ञान जगाकर हृदय में बसे हुए मोह रुपी अंधकार का नाश करती है और देवी दुर्गा, त्रिपुराम्बिका आदि विविध संज्ञाएँ को धारण करती है जो 'आनंदमयी' ऐसे नाम से प्रकाशमय हो रही है वह अनुपम ज्योति हमारा मंगल करो।

विश्वस्य सर्जनलयस्थितिहेतुभूत-
मानंदरूपमनघं परमात्मरूपम् ।
संतप्तजन्तुषु परां करुणां विधातुं
धृत्वा त्वदीयतनुमंब ! भुवावतीर्णम् ।।

हे अंबा ! विश्व के सृष्टि, स्थिति और लय के कारण, आनंदरुप और निर्दोष ऐसे परमात्मा ने दुःख से ग्रस्त प्राणीओं पर परम करुणा करने के लिए आपका शरीर धारण कर पृथ्वी पर अवतार लिया है।

हे सानुकम्पहृदये जननि ! प्रमूढान्
संसारकूपपतिताँस्तव रक्ष वत्सान् ।
हे कल्पवल्लरि सदा शरणागतानां
मातः प्रमार्जय मनोमुकुरान् द्रुतं नः ।।

हे अनुकंपा से भरे हुए हृदयवाली माँ ! अतिशय मूढ हुए, संसार के सागरकुएँ में फँसे हुए तुम्हारे वत्सो की रक्षा करो। सदैव शरण में आए हुए प्राणीओं के मनोरथो [इच्छाएँ] को पूर्ण करनेवाली है माँ ! आप तुरंत हमारे मनरुपी दर्पणों को निर्मल करो।

संसारदुर्गममहाविपिने भ्रमन्तः
श्रान्ता विकर्मजनितानुशयार्दिता ये ।
दुःखत्रयाग्निपरितप्तनिजान्तराश्च
त्वां शान्तये जननि ! सत्वरमाश्रयन्ति ॥

हे माँ ! जो संसार के दुर्गम महा अरण्य में घूमते घूमते थक गए हैं, अपने दुष्कर्मों से हुए पश्चाताप से पीडीत है, और आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ऐसे दीन-दुःखो के अग्नि से जिस का अंतर [हृदय] चिंता से घीरा हुआ है, ऐसे जीवों शान्ति के लिए [हंमेशा] तुरंत आपका आश्रय लेते हैं ।

संसारभोगभुजगैः परिदष्टजीवा-
स्त्वां तप्यमानहृदयाः समुपाश्रिता ये ।
तांस्त्वं सदैव विमलीकुरुषे स्वभक्तान्
शीघ्रं नयस्यभयदे तमसः परस्तात् ॥

हे अभयदा ! संसार के भोग रुपी सर्पों के दंश होने के कारण चिंतित हृदय वाले जो जीव आपके आश्रय में आए है एसे तुम्हारे भक्तों को आप हमेशा उनके राग-द्वेष जैसे गुस्से विष्ठा आदि को जड से दूर कर उन्हें विशुद्ध करती हो और उन्हें आप जल्दी से अज्ञानरुपी अंधकार की उस पार से जाते हो ।

तप्तं तपो नहि मया न कृता हि यज्ञा-
स्तीर्थाटनं न विधिना विहितं धरायाम् ।
ध्यानं जपश्च सततं न मया व्यधायि
भक्त्या नतस्तव पुरस्तनयः स्थितोऽयम् ॥

मैंने तप नहीं किया, यज्ञ-याग नहीं किए, विधिवत् तीर्थ स्थलों में भ्रमण नहीं किया, निरंतर ध्यान और जप भी नहीं किया भक्तिपूर्वक नमन करता हुआ [नमन से झुक जाने वाला आपका] यह पुत्र आपके समक्ष खडा है ।

औदार्यपूर्णहृदयासि सदैव मातः
प्रेम्णः परिस्फुटमिहास्ति तव स्वरुपम् ।
तस्माद्वहामि हृदयेऽविचलां प्रतीतिं
न त्वं जहास्यपि शिशुं तरलं तवाम्ब ॥

हे माँ ! आपका हृदय हंमेशा उदारता से परिपूर्ण है । इस संसार में आप प्रेम का स्पष्ट प्रगट हुआ स्वरुप हो । इसलिए माँ अंबा ! मुझे ऐसा अविचल विश्वास [प्रतीति] है कि आपके चंचल ऐसा [यह] शिशु का आप त्याग नहीं करोगी ।

दोषोपस्पृष्टमिदमस्ति ममान्तरङ्गं
विक्षिप्तमस्ति भजते न कदापि शान्तिम् ।
जानासि सर्वमिदमेव तथापि मात-
र्मां वीक्षसे करुणया महिमा तवैषः ॥

मेरा मन [काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि] दोषो से ग्रस्त है। वह अत्यंत विक्षिप्त है। और कभी भी शान्तिमय होता नहीं है। यह सब आप जानते हो, फिर भी माँ! आप मेरे सामने करुणा दृष्टि से देखते हो यह आपकी बडी महिमा है।

धन्या सदाम्ब वसुधा तव सन्निधानात्
त्वं यत्र संचरसि तत्र भुवं पुनासि ।
तीर्थं क्व मृग्यमसि जंगमतीर्थरूपा
तत्तीर्थमेव तव यत्र पदाब्जपंक्तिः ॥

हे अंबा ! आपकी उपस्थिति से वसुंधरा सदैव धन्य है। आप जहाँ से भी गुजरते हो वह भूमि पवित्र हो जाती है। मैं तीर्थस्थल को कहाँ ढूंढने जाऊँ ? आप ही जंगम [बडा] तीर्थस्वरुप है। वही तीर्थस्थल है जहाँ आपके चरण-कमल के चिह्न अंकित हैं।

वाग्वादिनी त्वमसि वाङ् मयबीजरूपा
प्रज्ञां प्रदेहि वरदायिनि ! ते सुतेभ्यः ।
कान्तिप्रदाभ्युदयदा त्वमिहासि लक्ष्मीः
काली त्वमेव भवबन्धनमोक्षदात्री ॥

आप समग्र वाणी [वाङमय] के बीजरुप सरस्वती हो । हे वरदायिनी! आप आपके सभी पुत्रों को बुद्धि प्रदान करो ! आप यहाँ [इस संसारमें] लावण्य और अभ्युदय का दान करने वाली लक्ष्मी हो। संसार रुपी बंधन में से मोक्ष देनेवाली काली माँ भी तुम ही हो।

आनंद एव घनतां प्रतिपद्य नूनं
धृत्वा तवाद्भुतवपुर्विचरत्यवन्याम् ।
तस्माद्विषण्णहृदयस्य विषादरात्रिं
जीवस्य हन्ति तव देवि ! कृपाकटाक्षः ॥

हे देवी ! आनंद ही घनीभूत होकर आप का अद्भुत स्वरुप धारण करके पृथ्वी पर विचर रहा है। इसलिए आपकी कृपादृष्टि दुःखों से भरे हुए हृदयवाले जीवन की दुःख भरी रात्रियों का संहार करता है।

किं साधनं ननु करिष्यति जीव एषः
शक्तिं स चेन्न लभते त्वदनुग्रहेण ।
यावन्निमां विवशतां नितरां च वीक्ष्य
क्रन्दत्यसौ जननि ! नो तव संश्रयाय ॥

हे जननी ! सच मे यह जीव आपके अनुग्रह से अगर शक्ति प्राप्त न करे और जहाँ तक अपनी खुद की लाचारी को अत्यंत देखकर [अच्छी तरह जानकर]आपकी सहायता के लिए रुदन न करे तब तक वह क्या साधना करेगा ?

यावन्न किञ्चिदपि कर्तुमहं समर्थः
शक्तिः प्रवर्तयति मां चितिरूपिणी या ।
ज्ञात्वा तथा न विजहाति निजाभिमानं
तावन्निजान्तरबलं लभते न जीवः ॥

जब तक "मैं कुछ भी करने में समर्थ नहीं, जो चैतन्यरुपी शक्ति है वह मुझे प्रेरित करती है ।" ऐसा जानकर अपने आप में रहे अहंकार का त्याग करता नहीं तब तक जीव [साधना करने योग्य] अपने आंतरिक बल प्राप्त करता नहीं है ।

त्वं प्रेमवर्षणपरासि परात्परासि
वात्सल्यमूर्तिरसि भक्तपरायणासि ।
देहात्मभावजनिताद्भवपाशबन्धा-
दस्मान्विमोचय सुतांस्तव दीनदीनान् ॥

आप हमेशां प्रेम की वर्षा करने में तत्पर रहती है । आप परात्पर हो, आप वात्सल्यमूर्ति हो, आप भक्त परायण हो । देहात्मक भाव से [देह ही आत्मा है ऐसे अहंकार से] उत्पन्न हुए संसारके इस बंधन में से आप हम जैसे दीन [गरीब] आप के पुत्रो को मुक्त करो ।

त्वं शक्तिरेव परमासि शिवस्त्वमेव
त्वं निर्गुणासि सगुणासि निरंजनासि ।
दूरे स्थितापि नितरां निकटे स्थितासि
अन्तःस्थितापि बहिरप्यवभासितासि ॥

आप ही परम शक्ति हो, आप ही शिव हो, आप ही निर्गुण हो, सगुण हो आप ही निरंजन हो, दूर होते हुए भी आप अत्यंत नजदीक हो । अंदर रहते हुए भी आप बहार प्रकाशित हो ।

त्वद्दर्शनं सकलपातकतूलराशिं
सद्यो विदह्य हृदयं विमलीकरोति ।
संसिच्य यत्तव कृपामृतवर्षणेन
त्वं भक्तजीवनमिदं सफलीकरोषि ॥

आप के दर्शनमात्र से ही आप पाप रुपी रुई के ढग को जला कर हृदय को निर्मल करते हो । आपकी अमृतमयी कृपा की हृदय पर वर्षा कर आप भक्त के इस जीवन को सफल कर देती हो ।

त्वं स्मर्यसे जननि ! तत्समकालमेव
संदृश्यते मनसि ते मधुरस्वरूपम् ।
ध्यायन्ति ये हृदयसंस्फुरितं तदेव
ते तत्त्वमेव परमं हृदि भावयन्ति ॥

हे जननी ! जब आपका स्मरण होता है उसी समय आपके मधुर स्वरुप का मन में दर्शन होता है । जो [भक्तों] अपने हृदयमें अंकुरित होते उस स्वरूप का ही ध्यान करते है वह स्वयं अंतर में परमात्मा रुपी परम तत्व का ही ध्यान करते हैं ।

नित्यं प्रसादसुमुखी प्रतिभासि मात-
स्त्वं ब्रह्माण: प्रकटमेव मनोज्ञरूपम् ।
श्रद्धां सदैव हृदि पोषय ते सुतानां
तेषां च वर्धय मुकुन्दपदानुरागम् ॥

हे माँ ! हरपल आप प्रसन्नता से सुशोभित मुखवाली ही प्रतीत होती हो । आप ब्रह्म से ही प्रकट हुए मनोहर स्वरुप हो । आप के पुत्रों की श्रद्धा का [उनके] हृदय में हंमेशा पोषण करो और कमलरुपी चरणों में उनके अनुराग की वृद्धि करो ।

मार्गे सतां प्रतिपदं विषमान्तराया:
श्रेयोऽर्थिनां हि बहुशो विनिहन्ति शान्तिम् ।
तेषां विघातजनितामपसार्य पीडां
शान्तिं कुरुष्व हृदये समुपाश्रितानाम् ॥

कल्याण [श्रेय] की कामना करने वाले सज्जनों के मार्ग में कदम कदम पर आए हुए विषम विघ्नों भिन्न प्रकार से उनकी शांति का नाश करता है । विघ्नों से उत्पन्न हुए उनकी पीडा को दूर कर [आप के] शरण में [आश्रय में] आए हुए श्रेयार्थी के हृदय में आप शान्ति की स्थापना करो ।

यत् पूरुषाच्च प्रकृतेश्च परं पुराणं
शुद्धं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यद् योगिनः परमकारणमामनन्ति
तत्ते सुतानवतु मातरचिन्त्यरुपम् ॥

हे माँ ! जो पुरुष से और प्रकृति से परे है, जो पुरुषोत्तम नामका शुद्ध, पुरातन, सनातन पद है; जिसको योगीजन परम कारण समझकर सूचित करते है । ऐसा आपका अचिंत्य स्वरुप आपके पुत्रों का रक्षण करो ।

त्वं भूर्जलं त्वमसि देवि हुताशनश्च
वायुश्च खं त्वमसि सर्वमधिष्ठिता त्वम् ।
त्वं चेन्द्रियाणि मन एव तथासि बुद्धिः
सर्वात्मिका जननि ! सर्वनियामिका त्वम् ॥

हे देवी ! आप पृथ्वी, जल और अग्नि हो, आप वायु और आकाश हो । आप सर्वमें विद्यमान हो । आप इन्द्रियों, मन और बुद्धि स्वरुप हो । हे जननी ! आप ही सब की आत्मा हो सब की नियामक हो ।

बुद्धिं प्रसादय मनः कुरु निश्चलं मे
कामादिदोषकलुषं कुरु निर्मलं तत् ।
अंतर्मुखोऽस्तु मम चेन्द्रियवर्ग एष
एवंविधोऽस्तु मयि तेऽम्ब सदा प्रसादः ॥

आप मेरी बुद्धि को प्रसन्न [विशुद्ध] करो, मेरे मन की चंचलता को दूर करो और काम, क्रोध वगैरह से कलुषित हुए मेरे मन को निर्मल करो और मेरे इस इन्द्रियोंके समूह को अंतर्मुख बनाओ । हे अंबा ! आप मेरे उपर ऐसी कृपा निरंतर करते रहो ।

विश्लेषितो निजगृहात्प्रभुपादमूला-
ज्जीवः परिभ्रमति मातरितस्ततोऽयम् ।
तस्मै प्रदर्श्य सुपथं, शरणागताय
शीघ्रं तमानय गृहं कृपया निरीक्ष्य ॥

हे माँ ! ईश्वर के चरण रुपी मूल ही जिसका अपना [सच्चा] घर है [आश्रयस्थान है] उससे विच्छिन्न [बिछडा हुआ] यह जीव यहाँ से वहाँ घुम रहा है । [आप के] शरण में आए हुए इस जीव को सन्मार्ग दिखाकर, उसके उपर कृपादृष्टि कर के आप तुरंत उनको [अपने] आश्रयस्थान में [प्रभु के चरण कमल में] पहुँचा दो [परमधाम में ले जाओ] ।

ध्यायन्ति ये हृदयमध्यपरिस्फुरन्ती
विद्युन्निभं किरणपुंजमिहाकिरन्तीम् ।
त्वां नित्यसस्मितमुखीं शरदिन्दुकांतिं
ते शान्तिमेव परमां समवाप्नुवन्ति ॥

आप हृदय की मध्य से स्फुरित हो, बीजली जैसे किरणों के समूह को उन में प्रसारित करती हो। आप नित्य स्मितपूर्ण और शरद ऋतु के चन्द्र समान तेजस्वी मुखारविंद वाली हो। ऐसे आप के स्वरुप का जो ध्यान करता है वही परम शान्ति को प्राप्त करता है।

एष स्तवो मयि तवाम्ब ! कृपाकटाक्षा-
त्सद्यो मया विरचितस्त्वयि भक्तिभावात् ।
यः श्रद्धया ननु पठिष्यति नित्यमेनं
लब्ध्वा कृपां तव भविष्यति सोऽत्र धन्यः ॥

हे माँ मुझ पर आपकी कृपादृष्टि बनाए रखने के कारण, आपके प्रति भक्तिभाव से मैंने अभी ही इस स्तोत्र की रचना की है। इस स्तोत्र का जो श्रद्धापूर्वक पाठ करेंगे वह आप की कृपा प्राप्त करके कृतार्थ हो जाएँगे।

त्वामानन्दमयीं स्मृत्वा कृपापीयूषवर्षिणीम् ।
आवाहनं वयं कुर्मस्त्वमत्रोपस्थिता भव ॥

कृपा अमृत को बरसानेवाली आप श्री श्री माँ आनंदमयी का स्मरण करके हम आपका आह्वान करते हैं, आप इस स्थल पर उपस्थित हो।

तव मंदिरनिर्माणं भूमावस्यां भवेदिति ।
प्रार्थयामो वयं सर्वे मातस्त्वां भक्तवत्सलम् ॥

इस भूमि में आपके मंदिर का निर्माण हो ऐसा हम सभी, भक्तवत्सला है माँ ! आप को प्रार्थना करते हैं।

● ● ●

'श्री श्री माँ आनंदमयी आश्रम' आने के लिए रेल्वे या हवाईजहाज से गुजरात के बडौदा आकर टेक्सी या बस से चाणोद आ सकते है। बडौदा से चाणोद के बीच का अंतर 55 कि.मि. हैं। चाणोद बस स्टेन्ड से श्री माँ का **'आश्रम'** 1.5 कि.मि. की दूरी पर है। जहाँ से रीक्षा या पैदल आ सकते हैं।

परिशिष्ट : 3

'संयम सताह' के विषय में माहिती

श्री श्री माँ आनंदमयी के आश्रम द्वारा 'संयम सप्ताह' की शुरुआत हुई, उससे पहले कई बार संयमव्रतका विचार श्री माँ ने भक्तों के समक्ष प्रकट किया था। उदाहरण के तौर पर दिनांक 16-8-1939 को श्री माँ ने श्री माँ के अनन्य भक्त प्रा. अमूल्यकुमार दत्त गुप्त के साथ बातचीत के दौरान संयमव्रत का महत्व स्पष्ट करते हुए कहा कि : "कई बार आप लोग फरियाद करते हो कि नाम-जाप करने के बावजूद भी कोई फल या परिणाम दिखता नहीं, पर कैसे दिखाई दे ? क्योंकि एक ओर आप दवाइ खाते हो और दूजी ओर [आहार-विहार] आप खाने-पीने की चरी न करो तो दवाई लेने का परिणाम कहाँ से मिले ? इसलिए कहती हूँ कि हर महिने के एक दिवस संयम का अभ्यास करना चाहिए। इस संयम का भाव जितना ज्यादा होगा उतना ही अच्छा है। क्योंकि हमेशां संयम के भाव से रहना ही उनका उद्देश्य है, परंतु शुरु शुरु में नहीं हो सकता। इसलिए बैशाख, सावन, कारतक, मागशर महिनों में – इस महिनों के कुछ कुछ दिन संयमव्रत अर्थात् 'इन दिनों में हम मनभावन चीजें नहीं खाएँगे, झूठ बोलेंगे नहीं, गुस्से होने का भाव भी नहीं आने देंगे। स्त्री को भगवतीके स्वरुप में देखेंगे, छोटे छोटे बच्चों में बालगोपाल की मूर्ती देखेंगे। इन लोगों के अनिच्छनीय कार्यो के प्रति असंतोष प्रगट नहीं करुँगा या ऐसा भाव भी नहीं आने दूँगा। संसार का जो कार्य करना जरुरी है वही कार्य करुँगा, पर जितना जरुरी है उतना ही। बाकी बचे समय में नाम-जप, कीर्तन, सद्ग्रंथोका वाचन में व्यतीत करुँगा।' इस तरह हमें कोशिश करनी चाहिए। संयम में शुरुआत में हमें सफलता नहीं मिलती पर धीरे धीरे संयम की आदत पड जाती है संयम के विषय में हम ढेर सारी बातें कर करते है परंतु हमे उसको आचरणमें लाना जरुरी होता है।

गीताजी ने भी योगाभ्यास की बात की है। इसलिए अभ्यास करना चाहिए।"

श्री माँ के कहने का सारांश यह है कि : "संयमव्रत का पालन करते करते संयमी जीवन जीते जीते, धीरे धीरे यह 'संयम' आपका दैनिक जीवन का एक अविभाज्य अंग बन जाता है। हंमेशा के लिए आप संयममय जीवन जीने लग जाओगे। उनका शुभ फल, अमूल्य फल आत्मतत्व का ज्ञान है। अंत में ज्ञान और भक्तिसभर जीवन आपको प्राप्त होगा, जो दुर्लभ होता है। असंयमित जीवन महादुःख का मूल है।"

खन्ना शहर में जब श्री माँ का जन्मोत्सव मनाया गया तब सोलन के राजा दुर्गासिंहजी ने [श्री माँ उनको 'योगीभाई' नाम से बुलाते थे] श्री माँ के समक्ष 'संयम सप्ताह' का विचार प्रकट किया।

साल में एक सप्ताह तक नियत किए समय पर श्री माँ के सांनिध्य में बैठकर ध्यान, जप, सत्संग आदि किए जाते है। श्री माँ ने इस अच्छे शुभ विचार का स्वीकार किया और इस तरह सन 1950 के दशक की शुरुआत [सन 1952 से] में हुई, काशी के [बनारस] आश्रम में से संयम सप्ताह का आरंभ हुआ। सात दिन के नियम विशेष रुप से सोच समझकर से किया गया। ताकि निर्विघ्न यह संयमव्रत पूर्ण हो सके।

एकबार विंध्याचल आश्रम में नो दिन के लिए संयमव्रत का आयोजन किया गया था। किसी एक भक्त ने तो साल में दो बार 'संयम सप्ताह' मनाने का प्रस्ताव रखा था। परंतु जो चीजमें अगर अतिरेक हो जाए तो उसकी कीमत नहीं रहती ऐसे विचार से हमने इस प्रस्ताव का स्वीकार नहीं किया। सामान्यतः यह व्रत कारतक सुद आठम से पूर्णिमा तक किया जाता है।

सात दिन के संयममहाव्रत का आयोजन इस प्रकार किया गया कि जिसमें 'अ' वर्ग और 'ब' वर्ग ऐसे दो भाग किए गए। श्री माँ प्रथम वर्ग को [First class] और दूसरा वर्ग को [Second class] ऐसा कहते थे। और व्रती को मजाक और प्रेम से पूछते "कौन से क्लास में हो ? First

class या Second class में ?" संयम सप्ताह की शुरुआत सामान्यतः कारतक सुद आठम से होती है।

उपवास और भोजन [आहार]

	अ [प्रथम] वर्ग	ब [दूसरा] वर्ग
प्रथम दिन	सिर्फ गंगाजल	रात को दूध
दूसरा दिन	सादी खीचडी	सादी खीचडी
तीसरा दिन	सब्जी के साथ आनंदमयी ब्रह्मखीचडी	सब्जी के साथ आनंदमयी ब्रह्मखीचडी
चौथा दिन [सामान्यतः अगियारस]	फलाहार	फलाहार
पाँचवा दिन	सादी खीचडी	सादी खीचडी
छठा दिन	ब्रह्मखीचडी	ब्रह्म खीचडी
सातवाँ दिन	सिर्फ गंगाजल	रोटी तथा सब्जी
हररोज रात में	—	दूध

स्वाध्याय - सत्संग

सुबह 7 बजे	वेदपाठ तथा उपनिषद
सुबह 8 बजे	८ से ९ एक घंटे का मौन-ध्यान
सुबह 9 बजे	गीतापाठ, चंडी स्तुति
सुबह 10 बजे	उपनिषद पर प्रवचन
दोपहर 3 बजे	तीन से चार एक घंटे का मौन ध्यान
सुबह और शाम	महात्माओं के पुराण पर प्रवचन
रात्रि 8 से 8.45	गीता पर प्रवचन
रात्रि 8.45 से 9	मौन-ध्यान
रात्रि 9 बजे	मातृसत्संग का कार्यक्रम-श्री माँ के साथ प्रश्नोत्तरी
अंतिम दिवस	रात 11.45 से 12.45 तक महानिशाध्यान

श्री माँ के ब्रह्मलीन होने के बाद भी प्रतिवर्ष इस संयमव्रत का आयोजन श्री श्री माँ आनंदमयी संघ द्वारा सामान्यतः हरिद्वार-कनखल आश्रम में होता रहा है। कई सालों से गुजरात के चाणोद, भीमपुरा श्री माँ के आश्रम में 31 जनवरी से 6 फरवरी तक इस प्रकार के संयमव्रत का आयोजन होता आया है। ब्रह्मलीन स्वामी श्री भास्करानंदजी की प्रेरणा से गुजरात के भीमपुरा आश्रम द्वारा संयमसप्ताह की शुरुआत हुई। श्री श्री माँ के अंतरंग शिष्यो में से स्वामी भास्करानंदजी का स्थान अनोखा था। स्वामीजी श्री माँ के कृपापात्र और शांत स्वभाव के, भेदभाव रहित, समस्त कामनाओं से परे, विकार रहित, विशाल हृदय के संत थे। बनारस से प्रकाशित होने वाला गुजराती 'अमृतवार्ता' के वे प्रधान संपादक थे। श्री श्री माँ के अनन्य भक्त विद्यावाचस्पति श्री अशोक कुलकर्णी लिखते है कि : "पू. ब्रह्मलीन स्वामी भास्करानंदजी महाराज परम पूजनीया श्री श्री माँ के प्रधान सहचरों में से एक थे। माँ की पूर्व जीवनलीला में दादा महाशय [श्री विपिनविहारीजी] दीदी माँ [श्री मुक्तानंद गीरीजी] तथा श्री भोलानाथजी [श्री रमणमोहन चक्रवर्तीजी] यह त्रयी प्रधान रुपसे दिखाई देते है। मध्यजीवन लीलामें श्री भाईजी, श्री गुरु प्रिया दीदी तथा श्री परमानंदजी इस त्रयीका प्रधान दर्शन होता है उसी प्रकार उनकी उत्तर लीलामें श्री निर्वाणानंदजी, श्री भास्करानंदजी और श्री निर्मलानंदजी यह त्रयी प्रमुखतः दृगोचर होती है।"

● ● ●

श्री ज्योतिषचन्द्र रोय की रचना

ध्यान : ॐ धृतसहजसमाधिं बिभ्रतीं हेमकान्तां
नयन–सरसिजाभ्यां स्नेहराशीन् किरन्तीम्।
मनसि कलितभक्तिं भक्तमानन्दयन्तीम्
स्मित–जित–शरदिन्दुं मातरं धीमहीह ॥ ॥ १ ॥

ॐ तपन–सकलकल्पं कल्पवृक्षोपमानं
शरणागतिजनानं तारकं क्लेशपाशात्।
हृदयकमलमध्ये स्थापयित्वेह मातु
र्विहितविविधकल्पं यादपीठं भजामि ॥ ॥ २ ॥

मंत्र : ॐ मा श्री श्री मातृपादपीठाय नमः ।

गायत्री : ॐ श्री श्री पादपीठाय विद्महे आनन्दमम धीमहि
तन्नो माता प्रचोदयात् ॐ

प्रार्थना : ॐ मातः प्रसीद परिपालय भक्तवृन्दां
संसारदुःखदहनात् करुणाकटाक्षैः ।
दूरीकरोतु दुरितानि सुदुःसहानि
त्वत्पादपीठमिह नः शरणागतानाम् ॥ ॥ १ ॥

ॐ

नमस्ते तु मातर्भवानि प्रसीद
नमस्ते पदाम्भोजपीठाय भूयः ।
शरण्ये तमःपारमस्मान्नय त्वम्
प्रपद्ये परं पावनं पादपीठम् ॥ ॥ २ ॥

● ● ●

SHREE SHREE ANANDAMAYEE SANGHA

• BRANCH ASHRAMS •

1. **Agarpara** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Kamarhati, Calcutta-700058 [Tel. 25531208]
2. **Agartala** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Palace Compound, P.O.Agartala-799001, West Tripura [Tel.0381-2208618]
3. **Almora** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Patal Devi, P. O. Almora- 263602 [Tel. 05962-233120]
4. **Almora** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Dhaul-China, Almora- 263881 [Tel. 05962-262013]
5. **Bhimpura** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhimpura, P.O. Chandod, Baroda- 391105 [Tel. 02663-233208 & 233782]
6. **Bhopal** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Bhairagarh, Bhopal- 462030 M. P. [Tel. 0755-2641227]
7. **Dehradun** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Kishenpur, P.O. Rajpur, Dehradun- 248009 [Tel. 0135-2734271]
8. **Dehradun** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Kalyanvan,176, Rajpur Road, P. O. Rajpur, Dehradun- 248009 [Tel. 0135-2734471]
9. **Dehradun** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Rajpur Ordanance Factory, Dehradun-248009 [Tel. 0135-2734471]
10. **Jamshedpur** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Near Bhatia Park, Kadma, Jamshedpur-831005
11. **Kankhal** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Kankhal, Hardwar- 249408. [Tel. 01334-31565]
12. **Kedarnath** : Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Near Himlok, P.O. Kedarnath, Rudraprayag

13. Naimisharanya	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Purana Mandir, P. O. Naimisharanya, Sitapur-261402, U.P. [Tel. 05862-285254]
14. New Delhi	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Kalkaji, New Delhi-110019 [Tel.011-2682813]
15. Pune	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Ganesh Khind Road, Pune-411007 [Tel. 020-25537835 & 25538903]
16. Puri	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Swargadwar,Puri-752001, Orissa [Tel. 06752-223258]
17. Rajgir	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Rajgir, Nalanda-803116, Bihar, [Tel. 06112-2610581]
18. Ranchi	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Main Road, P. O. Ranchi-834001, [Tel. 0651-2331181]
19. Tarapeeth	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Chandipur-Tarapeeth, Birbhum-731233
20. Uttarkashi	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Kali Mandir, P. O. Uttarkashi-249193 [Tel. 01374-224343]
21. Varanasi	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhadaini, Varanasi-221001 U. P. [Tel. 0542-2310054 & 2311794]
22. Vindhyachal	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, Ashtabhuja Hill,P.O.Vindhyachal, Mirzapur-231307 [Tel. 05442-290977]
23. Vrindaban	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Vrindaban, Mathura- 281121, U.P. [Tel. 0565-2442024]

BANGLADESH

1. Dhaka	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, 14, Siddheshwari Lane, Dhaka-17 [Tel. 00880-9356594]
2. Kheora	:	Shee Shree Ma Anandamayee Ashram, P. O. Kheora, Via-Kasba, Brahmanbaria.
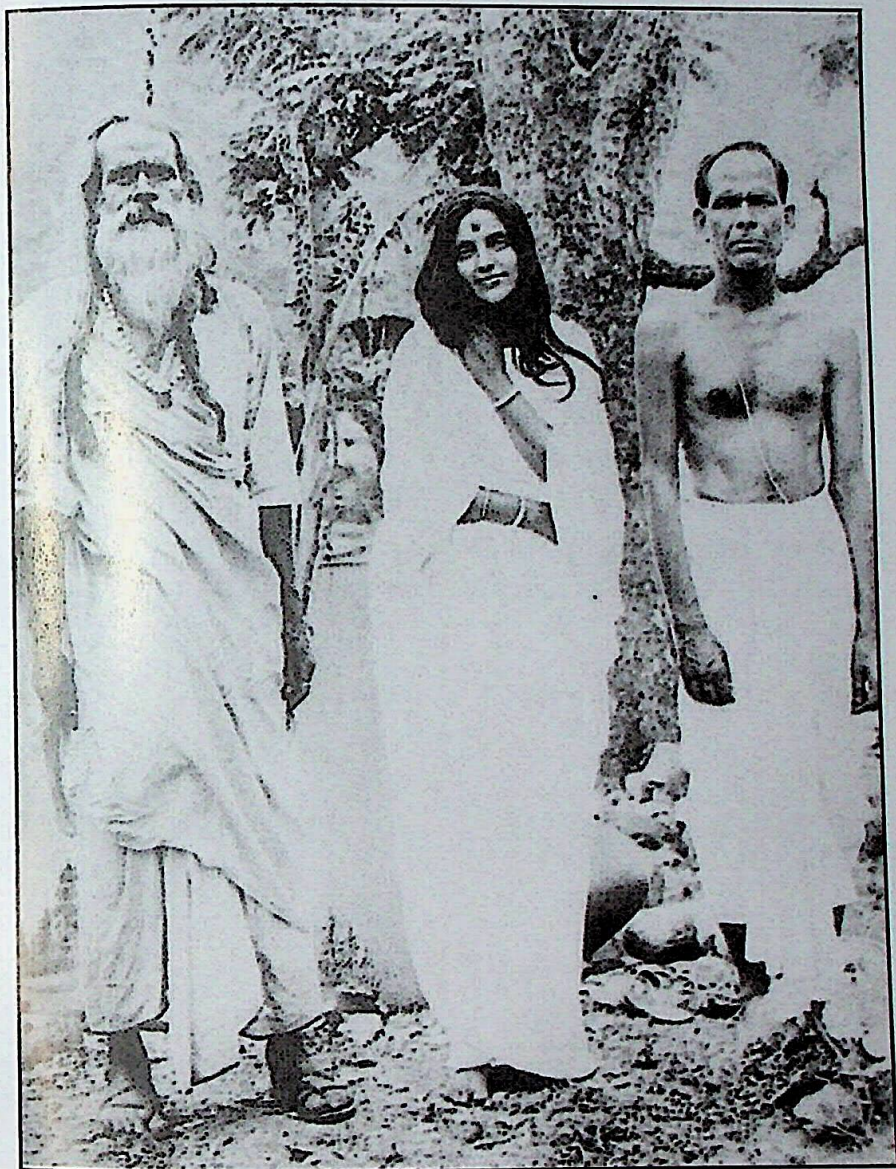
श्री श्री माँ भोलानाथ जी और भाई जी के साथ
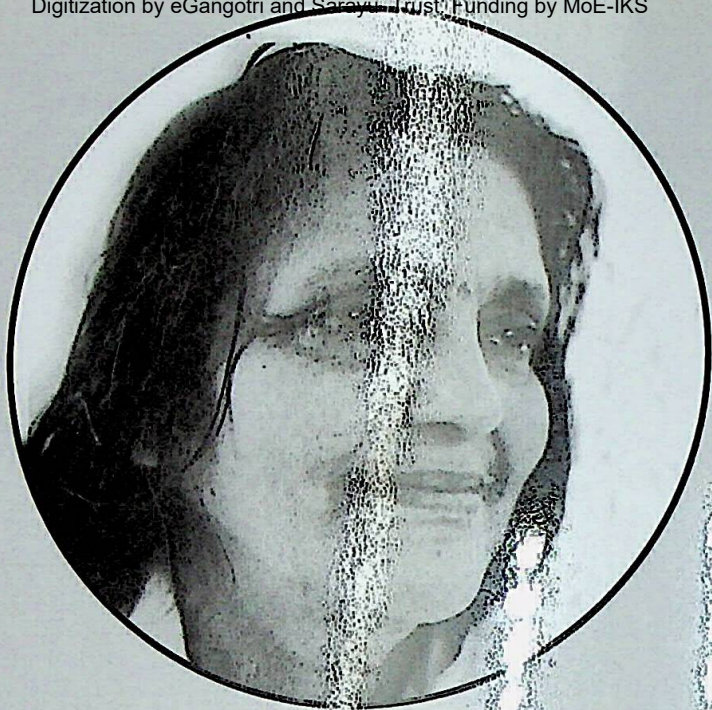
भगवान की कृपा से ही भगवान मिलते है। लोग अवश्य यह देखते है कि इन्होनें साधन भजन करके भगवान को पाया है, पर कब किस तरह मिलेगें यह भगवान ही निश्चित करके रखते है, जो हो रहा है, अपने आप ही हो रहा है, साधन भजन के फल से कुछ नहीं हो रहा है। हाँ साधन भजन की सार्थकता यह है वह अंधकार को नष्ट करता है। इसीलिये कहा जाता है कुछ किया नहीं जाता सब होता है। भगवान को पाना यह जो कहा गया यह केवल मात्र व्यवहारिक तौर पर कहा गया। यहाँ लाभालाभ कुछ नहीं है। जहाँ मात्र एक ही सत्ता है वहाँ कौन किसको लाभ करेगा अर्थात पायेगा।

श्री श्री माँ आनंदमयी